संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०७
नवम्बर २००१
कार्तिक मास
विक्रम सं. २०५८

हिन्दी
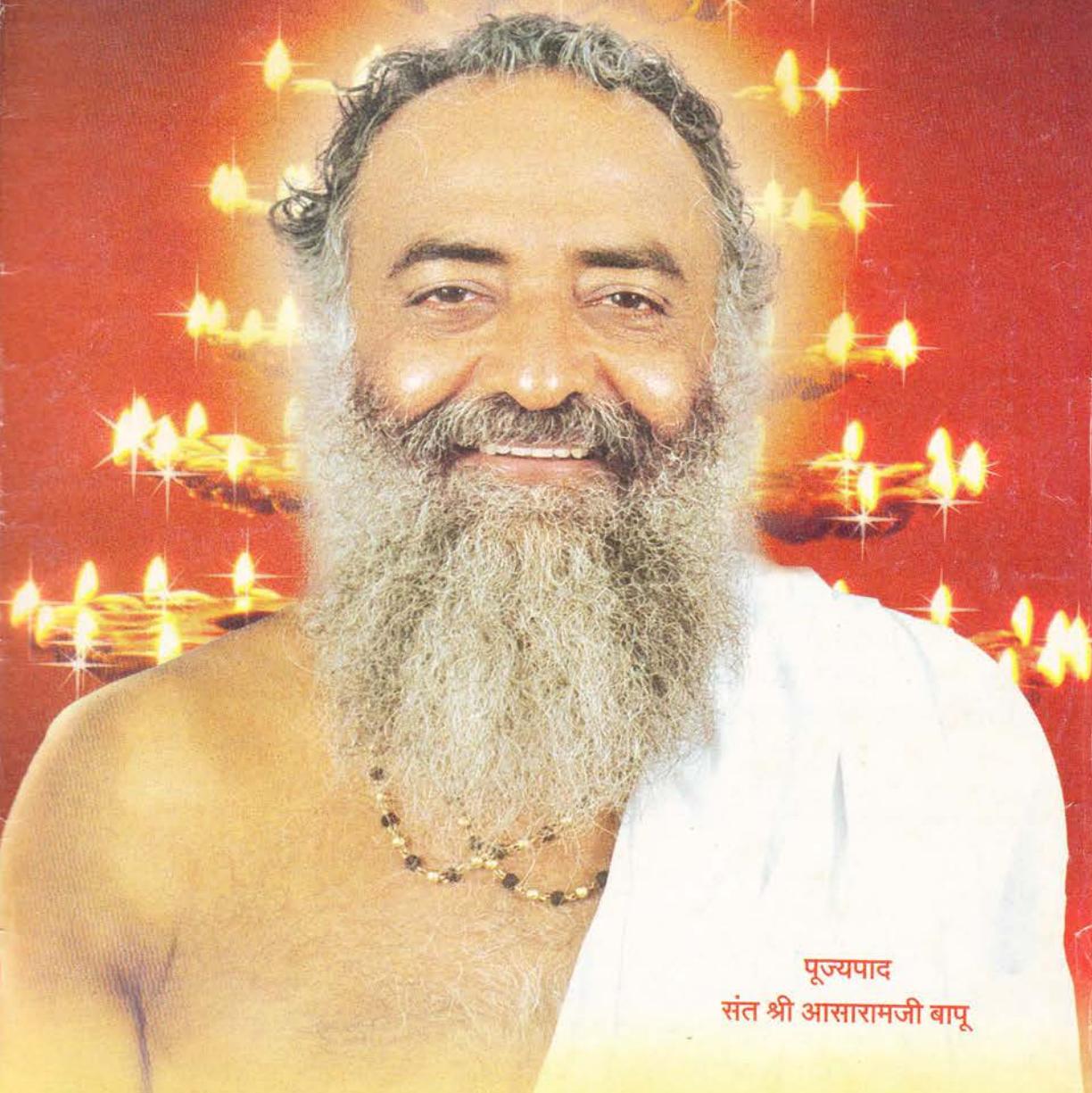
पूज्यपाद
संत श्री आसारामजी बापू

गुरुज्ञान का लेकर दीप अज्ञान-तम मिटाना, छोटीसी बातों की तुम गाँठ बाँध मत आना।
दीपावली का यही संदेश घर-घर में पहुँचाना, मिलो सभी से प्रभु के नाते मंत्र यही अपनाना॥

संत च्यवनप्राश

च्यवनप्राश विशिष्ट आयुर्वेदिक उत्तम औषध एवं पौष्टिक खाद्य है, जिसका प्रमुख घटक आँवला है । जठराग्निवर्धक और बलवर्धक च्यवनप्राश का सेवन अवश्य करना चाहिए ।

५६ प्रकार की वस्तुओं के अतिरिक्त हिमालय से लायी गयी वज्रबला (सप्तधातुवर्द्धनी वनस्पति) भी डालकर यह च्यवनप्राश बनाया गया है ।

मात्रा : दूध या नाश्ते के साथ १५ से २० ग्राम सुबह-शाम । बच्चों के लिये ५ से १० ग्राम ।

लाभ : बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण, स्त्री-संभोग से क्षीण, शोषरोगी, हृदय के रोगी और क्षीण स्वरवाले को इसके सेवन से काफी लाभ होता है । इसके सेवन से खाँसी, श्वास, प्यास, वातरक्त, छाती का जकड़ना, वातरोग, पित्तरोग, शुक्रदोष और मूत्ररोग आदि नष्ट हो जाते हैं । यह स्मरणशक्ति, बुद्धिवर्धक, कान्तियुक्त वर्ण और प्रसन्नता देनेवाला है तथा इसके सेवन से बुढ़ापा देरी से आता है । यह फेफड़ों को मजबूत करता है, दिल को ताकत देता है, पुरानी खाँसी और दमा में बहुत फायदा करता है तथा दस्त साफ लाता है । अम्लपित्त में यह बड़ा फायदेमंद है । वीर्यविकार और स्वप्नदोष नष्ट करता है । इसके अतिरिक्त यह राजयक्ष्मा (टी. बी.) और हृदयरोगनाशक तथा भूख बढ़ानेवाला है । संक्षिप्त में कहा जाये तो पूरे शरीर की कार्यविधि को सुधार देनेवाला है ।

१ किलो का मूल्य रु. ११०/- डाक खर्च सहित रु. १७५/- ५ किलो का मूल्य रु. ५५०/- डाक खर्च सहित रु. ७४०

केसरयुक्त स्पेशल च्यवनप्राश भी उपलब्ध है । एक किलो का मूल्य : २२५/- डाक खर्च सहित रु. २९०/-

रसायन चूर्ण

ऊर्जावर्धक, शक्तिदायक, धातुरक्षक व पौष्टिकता से पूर्ण

चालीस वर्ष की उम्र के बाद दीर्घ जीवन व शरीर सुरक्षा हेतु सभी को लेना चाहिए । पूज्य बापूजी को इसके फायदे का कुछ समय पूर्व ही पता चला । इसका परम हितकारी स्वास्थ्य लाभ बापूजी को हुआ । आप सभी को भी इसका लाभ मिले ऐसी उनकी प्रेरणा है ।

लाभ : यह चूर्ण पौष्टिक, बलप्रद, खुलकर पेशाब लानेवाला एवं वीर्यदोष दूर करके वीर्य वृद्धि करता है । जीर्ण ज्वर तथा शरीर में गहरा उतरा हुआ धातुगत ज्वर दूर होकर तीनों दोष सम होते हैं । शरीर में शक्ति, स्फूर्ति एवं ताजगीवर्द्धक है तथा दीर्घ जीवन देनेवाला है । त्रिदोष सम करके रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाता है इसलिए इसे सर्व सुलभ रसायन कहा गया है । रोगी-निरोगी सभी इसका सेवन कर सकते हैं ।

मात्रा एवं अनुपान : २ से १० ग्राम : घी, शहद या पानी से अथवा वैद्य की सलाह से लें । दूध से ले सकते हैं ।

१०० ग्राम रु. २०/- डाक खर्च सहित रु. ५५/- ४०० ग्राम रु. ८०/- डाक खर्च सहित रु. ११५/-

अश्वगंधा चूर्ण

एक श्रेष्ठ बल्य रसायन

मात्रा व सेवन-विधि : *मात्र एक चम्मच सुबह-शाम गुनगुने दूध के साथ खाली पेट मिश्री मिलाकर लेवें । १ से ३ ग्राम चूर्ण और १०-४० मि.ली. आँवले का रस मिलाकर लेने से शरीर में दिव्य शक्ति आती है ।*

लाभ : अश्वगंधा एक बलवर्धक व पुष्टिदायक श्रेष्ठ रसायन है । यह मधुर व स्निग्ध होने के कारण वात का शमन करनेवाला एवं रस-रक्तादि सप्त-धातुओं का पोषण करनेवाला है । इससे विशेषतः मांस व शुक्रधातु की वृद्धि होती है । यह चूर्ण शक्तिवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक एवं स्नायु व मांसपेशियों को ताकत देनेवाला, कद बढ़ानेवाला एक पौष्टिक रसायन है । धातु की कमजोरी, शारीरिक-मानसिक कमजोरी आदि के लिए रामबाण औषधि है ।

१०० ग्राम रु. २०/- डाक खर्च सहित रु. ५५/- ४०० ग्राम रु. ८०/- डाक खर्च सहित रु. ११५/-

* डी. डी. / मनीआर्डर भेजने का पता : संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, साबरमती, अमदावाद- 5.

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०७
९ नवम्बर २००१
कार्तिक मास, विक्रम संवत् २०५८ (गुज. २०५७)

सम्पादक : न. च. गुप्ता
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramamd@ashram.org
web-site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : न. च. गुप्ता
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ एवं शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० एवं रात्रि १०.०० से १०.३०

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।
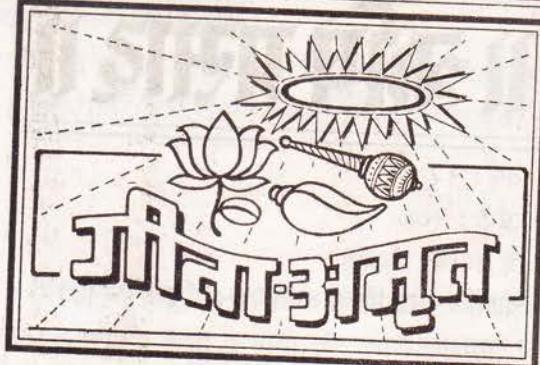
... हैं जनक बापू आसाराम

देते हैं सत्संग सुख संतश्री निष्काम।
परिवर्तन के हैं जनक बापू आसाराम।
क्या होता है योग, तप देखें सभी प्रत्यक्ष।
शांत, सौम्य व्यक्तित्व है, प्रवचन में हैं दक्ष ॥
देते ऐसी सीख नित, बनते बिगड़े काम।
परिवर्तन के हैं जनक बापू आसाराम ॥
ऋषि-मुनियों की शक्ति का ज्योति पुंज हैं आप।
मंत्र, मंत्रणा से मिटें रोग, शोक व पाप ॥
जो आते श्रीचरण में पाते धन, सुख, दाम।
परिवर्तन के हैं जनक बापू आसाराम।
चला रहे हैं मान्यवर, नशा मुक्ति अभियान।
युवाजन रक्षा में सदा लगे रहें श्रीमान ॥
पिला रहे 'हरि नाम' के आप जाम पर जाम।
परिवर्तन के हैं जनक बापू आसाराम ॥
अनुभ' की परतें खुलीं, तन मन हुआ पवित्र।
देखा जिसने ध्यान से संतश्री का चित्र ॥
अपनी आशा राम हैं, बापू पूरण काम।
परिवर्तन के हैं जनक बापू आसाराम ॥

- दिनेश पवन, बरेली।

*

शुभ या अशुभ हो कार्य जो, जिस काल में आ जाय है।
आग्रह बिना कर लेय है, नहिं सोच मन में लाय है ॥
चेष्टा करे सब बाल ज्यों, नहिं इन्द्रियाँ होती विकल।
नहिं राग हो नहिं द्वेष हो, है जन्म उसका ही सफल ॥
कर्त्तापना, भोक्तापना, जो आत्म में नहिं मानता।
मन-वृत्तियाँ सब क्षीण होतीं, आत्म को पहिचानता ॥
मन-वृत्ति जिसकी क्षीण हों, अंतःकरण होवे विमल।
सो ही सुखी है विश्व में, है जन्म उसका ही सफल ॥

एक का ही आश्रय लें ...

(कल-कल, छल-छल करती पतित पावन गंगा, यमुना एवं सरस्वती का त्रिवेणी संगम-स्थल अर्थात् तीर्थराज प्रयाग में पूज्यश्री ने तीन महीने के मौन के बाद बहायी गीता-ज्ञानगंगा...)

क्यों सिद्ध बनना चाहता, तुझी से सभी सिद्ध हैं।
हैं खेल सारी सिद्धियाँ, तू सिद्ध का भी सिद्ध है ॥

अपनी आत्मा को देखो, अपने परमेश्वर से नाता जोड़कर चेष्टा करो। अपने दिलबर को पीठ देकर शरीर का अहं सजाओगे तो कहींके नहीं रहोगे। रावण और कंस इसीमें तबाह हो गये। हिटलर और सिकंदर में भी बहुत-सी योग्यताएँ थीं लेकिन... शरीर का नाम भी कब तक रहेगा ?

परमेश्वर के नाते आप सबसे मिलें... परमेश्वर के नाते पति की, पत्नी की, साधक की, संत की, सबकी सेवा करें, बस। तभी आपको विश्रांति मिलेगी और विश्रांति आपकी माँग है। परमात्मा में विश्रांति पाने से आपका जीवन स्वाभाविक ही स्वस्थ, सुखी और सन्मानित हो जायेगा, उसके लिए आपको कोई नाटक नहीं करना पड़ेगा, उसके लिए आपको कोई षड्यंत्र नहीं करना पड़ेगा। मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप जो करें, ईश्वर के नाते करें।

'मुझे यह सुख देगा... यह काम में आयेगा...' ऐसा सोचकर परमेश्वर के साथ क्यों गद्दारी करता है ? जो मौत के बाद भी तेरा साथ नहीं छोड़ेगा, उसको छोड़कर तू मरनेवाले का आश्रय लेता है ? मिटनेवाले का आश्रय लेता है ? अमिट का आश्रय छोड़कर मिटनेवाले का कब तक आश्रय लेगा ? शाश्वत को छोड़कर नश्वर की शरण कब तक जायेगा ?

'यह मेरे काम आयेगा... वह मेरे काम आयेगा...'

ना, ना ! ये शरीर के काम आयेंगे तो अहंकार बढ़ेगा और काम नहीं आयेंगे तो दुःख, विषाद व अशांति होगी। तेरे काम तो केवल तेरा पिया आयेगा। तू नींद में रोज उसीमें जाता है, कभी ध्यान में बैठे-बैठे भी उसमें जा... तेरा तो कल्याण होगा, तेरी मीठी निगाहें जिस पर पड़ेंगी वह भी उन्नत होने लगेगा, महान आत्मा होने लगेगा।

'श्रीमद्भगवद्गीता' में आता है :

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

'राग, भय और क्रोध से सर्वथा रहित, मेरे में ही तल्लीन, मेरे ही आश्रित तथा ज्ञानरूप तप से पवित्र हुए बहुत-से भक्त मेरे भाव को, मेरे स्वरूप को, मेरे अनुभव को प्राप्त हो चुके हैं।' *(गीता : ४.१०)*

वीतराग... राग को हटाता जा... **भयक्रोधा...** डर क्यों लगता है ? शरीर को 'मैं' मानता है, वस्तुओं को सच्चा मानता है इसलिए तू डरता है, विकारों को पोषता है इसलिए तू डरता है, कपट रखता है इसलिए तू डरता है। तू सच्चाई की शरण ले। भय हटा दे।

क्रोध क्यों होता है ? वासना की पूर्ति में कोई छोटा विघ्न डालता है तो उस पर क्रोध होता है, बड़े से भय लगता है, बराबरीवाले से द्वेष होता है। तू वासना को महत्त्व न दे, तू परमात्मा की प्रीति को महत्त्व दे मेरे प्यारे ! तो तू सचमुच में प्रभु का प्यारा हो जायेगा।

तू परमात्मा की प्रीति को महत्त्व देना भूल गया है इसलिए क्रोध में पचता है, भय से काँपता है, राग में फँसता है मेरे भैया ! तू फँसने के लिए, तपने के लिए नहीं आया। तू संसार के स्वामी का अनुभव करके मुक्त होने के लिए संसार में आया है।

जरा-जरा बात में क्यों डरता है ? जरा-जरा बात में क्यों चिन्तित होता है ? दो रोटी ही तो खानी हैं। किसी करोड़पति की स्त्री फुटपाथ पर दो रोटी माँगे तो इज्जत किसकी जायेगी ? करोड़पति की जायेगी। ऐसे ही करोड़पतियों के बाप के भी बाप परमेश्वर ने तुझे पैदा किया है, वह अगर तुझे भूखा और नंगा रखता है तो उसकी इज्जत का सवाल है, इसमें तेरा क्या बिगड़ता है ?

उसकी शान वह सँभालता है। फिर क्यों कपट करें ? क्यों चिंता करें ? क्यों डरें ? क्यों रोयें ? राग, भय और क्रोध को आज से ही अलविदा कर दे। जैसे, त्रिवेणी में बालू और तिनके बह जाते हैं ऐसे ही सत्संग की त्रिवेणी में आज ये तीनों चीजें बहा दे, बस ! 'भय, क्रोध और राग तू जा... प्रीति, नम्रता और प्रभु-आस्था तू मेरे दिल में आ...'

'मुझे बड़ी चिंता है, मैं क्या करूँ...?' अरे ! जन्म लेना तेरे हाथ में नहीं है। बालों को सफेद होने से रोकना तेरे हाथ में नहीं है। मौत को थाम लेना तेरे हाथ में नहीं है। अन्न पचाना तेरे हाथ में नहीं है। भूख लगाना तेरे हाथ में नहीं है। रक्त का संचार करना तेरे हाथ में नहीं है। वह परमात्मा ये सब कर रहा है तो बाकी का भी उसके चरणों में सौंपकर तू विश्रांति पा। फिर देख, हँसने का भी मजा... खाने का भी मजा... पीने का भी मजा... जीने का भी मजा... मरने का भी मजा... तू चिंता मत कर, चिंतन कर, भैया !

मन्मया... अर्थात् उसी ब्रह्म परमात्मा के चिंतन में एकाकार होना। **मामुपाश्रिताः...** मेरे आश्रित हो जा। जैसे, बच्चा माँ-बाप, दादा-दादी के आश्रित होता है तो मध्यरात्रि में भी उन्हें दौड़-धूप करा देता है क्योंकि बच्चा उनके आश्रित है। ऐसे ही तुम भी परमात्मा के आश्रित हो जाओ। फिर देखो, वह कितना सँभालता है...

'मुझे तो बहुत मिला है। मैं आपको क्या बताऊँ ? मैं एक आसाराम नहीं, हजार आसाराम हों और एक-एक आसाराम की हजार-हजार जिह्वायें हों फिर भी उसने जो दिया है, उसका बयान नहीं कर सकता हूँ ! आपको सच बोलता हूँ। आप उसका आश्रय लें, आपसे मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ।

जो सभीका आश्रय है, आपका भी सचमुच में वही आश्रय है लेकिन आप कपट का आश्रय लेकर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं... आप काम का आश्रय लेकर अपने को नोचते हैं... आप द्वेष का आश्रय लेकर अपने को सताते हैं... आप लोभ का आश्रय लेकर अपने को डुबाते हैं। आप उसीका आश्रय लीजिये, जो ब्रह्मांडों का आश्रयदाता है, आपका भी वही आश्रयदाता है। जो मेरी जीभ का आश्रयदाता है, आपके कानों का भी वही आश्रयदाता है। इतने निकट के आश्रयदाता को छोड़कर कब तक भटकते रहोगे ? कब तक गिड़गिड़ाते रहोगे ? कब तक पचते रहोगे ?... क्या आपकी बुद्धि निर्णय कर

सकती है उसके आश्रय के बिना ? क्या आपका मन सोच सकता है उसके आश्रय के बिना ? क्या आपका शरीर चल सकता है उसके आश्रय के बिना ? क्या धरती टिक सकती है उसके आश्रय के बिना?

इतने समर्थ प्रभु का आश्रय छोड़कर कहाँ तक भटकोगे ? कब तक भटकोगे ? भैया !

कबीरा माँगे माँगणा प्रभु दीजे मोहे दोय।
संत समागम हरि कथा मो उर निशदिन होय ॥

संत-समागम, हरि-कथा हरि-स्वरूप के आश्रय में स्थित करते हैं। उस आश्रय में गोता मारना ही सत्संग का उद्देश्य है।

हम आश्रय तो भगवान का लेते हैं और प्रीति संसार से करते हैं। नहीं, आश्रय भी भगवान का और प्रीति भी भगवान की। आपका तो काम बन जायेगा, आपकी मीठी निगाहें जिस पर पड़ेंगी उसका भी मंगल होने लगेगा। यह बिल्कुल सच्ची बात है। उसका आश्रय लेकर तो देखो ! हम परमात्मा का थोड़ा-बहुत आश्रय लेते भी हैं लेकिन प्रीति संसार की होने से उस आश्रय का पूरा लाभ, पूरा सुख नहीं ले पाते। उसका पूरा लाभ व पूरा सुख पाने के लिए आश्रय भी उसीका और प्रीति भी उसीकी हो।

आश्रय तो श्रद्धालु भी लेते हैं लेकिन उसको बाहर खोजते हैं, दूर खोजते हैं। कहते तो हैं : 'हम भगवान की शरण में हैं।' लेकिन आप अपने को तो जानो कि शरण में जानेवाला कौन है ? और जिस भगवान की शरण में जाते हो उसकी शरण को भी जान लो। कैसे जानें ? ज्ञानरूपी तप से।

भगवान कहते हैं :

...बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥

'...बहुत-से भक्त ज्ञानरूप तप से पवित्र हुए मेरे भाव को प्राप्त हो चुके हैं।' अर्थात् जैसे भगवान मुक्तात्मा, ब्रह्म-परमात्मा हैं ऐसे ही अपने को मुक्तात्मा, ब्रह्म-परमात्मा समझकर कई भक्त भगवान को प्राप्त हो चुके हैं। आप भी भगवान को जानकर मुक्तात्मा हो जाओ। अपना लक्ष्य ऊँचा बना लो और उसका बार-बार सुमिरन करो। दोहराओ :

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
सफलता तेरे चरण चूमेगी, आज नहीं तो कल ॥

*

अन्तःकरण के मुख्य दोष

(जाबल्य ऋषि की तपस्थली, साबरमती के तट पर बने मोटेरा आश्रम में पूज्यश्री ने अंतःकरण के मुख्य दोषों पर प्रकाश डालते हुए अपने प्यारे साधकों को कहा :)

भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग का आखिरी फल तो एक ही है : उस परमतत्त्व को जानना, जो सत्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है और अनंत है। श्रुति कहती है :

सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म।

...लेकिन बाबा ! भक्ति के, ज्ञान के और कर्म के आरंभ में क्या कोई फर्क है ?

हाँ, थोड़ा होता है। भक्ति सगुण, साकार ब्रह्म के लिए प्रेम उभारने हेतु अंतःकरण की भावमय, रसमय दशा है। निष्काम कर्म सेवामय वृत्ति बनाकर अंतःकरण को सुख देनेवाला है और जहाँ से भक्ति का भाव या रस आता है अथवा जहाँ से सेवा के फलस्वरूप शांति या सुख आता है, उस मूल के विचार को बोलते हैं - तत्त्वज्ञान।

अंतःकरण के तीन दोष हैं : मल, विक्षेप और आवरण।

मल क्या है ? उचित-अनुचित का विचार किये बिना मन में जैसा आये वैसा करके सुख लेना।

या पर्यंत जीवेत् सुखेन जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।

'जब तक जीयें, सुख से जीयें, ऋण करके भी घी पीयें...।' मल माने, न करने जैसा करके भी मजा लेना, न खाने जैसा खाकर भी मजा लेना, न बोलने जैसा बोलकर भी मजा लेना... अर्थात् केवल मजे

के लिए लपक पड़ना। जैसे, मछली स्वाद के मजे के लिए लपक पड़ती है और फँस जाती है, पतंगा रूप के मजे के लिए दीये पर लपक पड़ता है और जल मरता है, भ्रमर सुगंध के मजे के लिए लपक पड़ता है और कमल में कैद हो जाता है, हिरण शब्द के मजे के लिए लपक पड़ता है और मारा जाता है, हाथी स्पर्श के मजे के लिए लपक पड़ता है और जीवनभर महावत की गुलामी करता है। ऐसे ही हम लोगों का मन लपक पड़ता है : 'पान-मसाला खाऊँ, बीड़ी पीऊँ, शराब पीऊँ, दुराचार करूँ, चोरी करूँ... कुछ भी करके मजा लूँ'। यह अन्तःकरण की मलीनता का ही प्रभाव है। पाप-वासना, अशुद्ध आसक्ति, भोग-वासनाएँ, ये मलदोष ही हैं।

निष्काम कर्म करके अंतःकरण का मलदोष निकाला जा सकता है। बाहर के सुख की वासना मिटाने के लिए निष्काम कर्म सहायक होते हैं। औरों को सुख देने के कार्य करने से अपने सुख की वासना निवृत्त होती है और मलदोष निवृत्त होने लगता है।

भक्तियोग से भी मलदोष निवृत्त होता है। निगुरे और अभक्त लोग जितना शास्त्र-मर्यादा का उल्लंघन करते हैं और उनका मन जहाँ-तहाँ लपक पड़ता है, उतना भक्तों और सगुरों के द्वारा नहीं होता। भक्तों और सगुरों के जीवन में पचासों गलतियाँ दिखेंगी लेकिन वे भक्त या शिष्य नहीं बनते तो पाँच सौ गलतियाँ करते और गलती को गलती नहीं मानते। भक्त या शिष्य गलती को गलती तो मानते हैं।

भक्त कभी यह न सोचे : 'अरे रे रे... मुझमें इतनी गलतियाँ हैं, मुझमें इतने दोष हैं... भगवान! मैं तेरे दर्शन के योग्य नहीं हूँ।' नहीं, नहीं, भक्त ऐसा न सोचे और न ही भक्ति छोड़कर संसारियों के खिंचाव में आकर्षित हो जाय। वरन् वह प्रार्थना करे : 'अपने दोष छोड़ने में मैं असमर्थ हूँ प्रभु! लेकिन मैं तेरा हूँ... अब तू ही कृपा कर।' भक्त जब भगवान का बनता है तो दोष भक्त के नहीं रहते, भगवान अपने समझकर उनको हटाने का सामर्थ्य दे देते हैं।

दूसरी बात, यदि भक्त अपने में दोष मानता है तो दोष को बल मिलता है। भक्त अंतःकरण में दोष देखे, अपने में नहीं। 'दोष अंतःकरण में होते हैं, मल अंतःकरण में होता है, विक्षेप अंतःकरण में होता है, आवरण अंतःकरण में होता है। मुझमें तो परमात्मा है और मैं परमात्मा में हूँ।' इस प्रकार का चिंतन करने से भी अंतःकरण के दोष जल्दी निवृत्त होते हैं।

किसीके अंतःकरण में कोई गुण है लेकिन भक्ति नहीं है, भगवान का आश्रय नहीं है तो वह गुण ज्यादा समय नहीं टिक सकता। रावण, कंस, दुर्योधन, हिटलर, सिकंदर आदि एकदम गये-बीते नहीं थे। उनमें भी गुण थे। रावण और कंस के पास इतना सामर्थ्य था कि देवता तक उनसे काँपते थे। दुर्योधन ऐसा प्राणनिरोध करता था कि जल में समाधिस्थ हो जाता था। हिटलर, सिकंदर भी एकाग्रता में आगे थे। लेकिन...

गुण होते हैं उस देव के, आत्मचैतन्य के, इसीलिए गीता में २६ गुणों को 'दैवी संपदा' कहा गया है। अभय, सत्य, संशुद्धि... आदि २६ गुणों का वर्णन गीता के १६वें अध्याय के प्रथम तीन श्लोकों में आता है, जिन्हें बोलते हैं दैवी गुण। दैवी गुण माने, जो गुण उस देव के हैं, लेकिन उस देव का आश्रय नहीं है तो अहं अपने गुण मान लेता है तथा उसमें उलझ जाता है और वे गुण दुर्गुण हो जाते हैं।

अगर भक्त में अवगुण हैं तो वह अपने को अवगुणी न माने और गुण हैं तो गुणवान न माने। लेकिन अपने को भगवान का माने और भगवान को अपना माने तो भगवान का देवत्व अपने में बढ़ते-बढ़ते दैवी गुण बढ़ जायेंगे और वे दैवी गुण अवगुणों को समाप्त कर डालेंगे। इससे अंतःकरण का मलदोष निवृत्त होगा।

दूसरा होता है अंतःकरण का विक्षेप। जैसे, दर्पण गंदा है तो समझो मल है और दर्पण हिल-डुल रहा है तो है विक्षेप। हिलते-डुलते दर्पण में चेहरा ठीक से नहीं दिखेगा। यदि दर्पण स्थिर होगा तभी चेहरा ठीक से दिखेगा। ऐसे ही अंतःकरण पवित्र तो है लेकिन जप-ध्यान करने बैठते हैं तो बस, जैसे फिल्म की पट्टी चलती है वैसे विचार-पर-विचार आने लगते हैं, यह है विक्षेप।

मलदोष निवृत्त होता है सेवा, सत्कर्म, दान-पुण्य आदि से और विक्षेप दूर होता है भक्ति, उपासना, जप-ध्यान आदि से। इसके बाद एक ही दोष रहता है, ईश्वरप्राप्ति में एक ही सोपान बाकी रहता है आवरण अर्थात् अज्ञान। वस्तुतः 'मैं क्या हूँ' इसका पता नहीं है और देह को 'मैं' मानकर 'मैं फलाना हूँ, मैं फलानी हूँ...' मान बैठे। 'मैं वास्तव में क्या हूँ' इसका अज्ञान ही आवरण है।

आवरण दो प्रकार का होता है :

(१) असत्त्वापादक आवरण और

(२) अभानापादक आवरण।

असत्त्वापादक आवरण आम आदमी को होता है। उसे ईश्वर के अस्तित्व का पता नहीं होता। वह सोचता है : 'भगवान होते तो दिखते...'

अभानापादक आवरण भक्तों को, साधकों को होता है। उनको ईश्वर के अस्तित्व का भान नहीं होता है। वे मानते तो हैं कि भगवान हैं, उनकी प्रेरणा भी मानते हैं, उन्हें ईश्वर के अस्तित्व के विषय में समझ में तो आता है लेकिन अनुभव नहीं होता है।

असत्त्वापादक आवरण गुरु के ज्ञान से हट जाता है। भक्त ने, साधक ने, जिसने सत्संग सुना है, वह मानता है कि भगवान हैं और मेरी आत्मा होकर बैठे हैं।

'भ' माने भरण-पोषण की सत्ता, 'ग' माने गमनागमन की सत्ता, 'वा' माने वाणी का उद्‌गम स्थान, 'न' माने यह सब नहीं होने के बाद भी जो रहता है, वह भगवान मेरा आत्मा है। यह सार सत्संग के द्वारा वह समझ तो लेता है लेकिन अभी केवल समझा है , इसका अनुभव नहीं हुआ। इसे बोलते हैं अभानापादक आवरण।

जब तक यह आवरण दूर नहीं हुआ, जब तक ईश्वर का अनुभव नहीं हुआ तब तक यात्रा अधूरी है। ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हुआ तब तक जीवन अधूरा है।

अभानापादक आवरण दूर करने के लिए आत्मा-परमात्मा के विषय में 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण', 'ब्रह्मसूत्र' व उपनिषदों का श्रवण करें, सुने हुए का मनन करें, निदिध्यासन करें (अर्थात् गोता मारें)।

मुझे थोड़ा आनंद आता था, थोड़ी अनुभूतियाँ भी हुई थीं लेकिन मन में होता था कि 'पूज्य श्रीलीलाशाह बापू को साक्षात्कार हुआ उतना तो मुझे नहीं हुआ। बापू को इतने लोग मानते हैं, मुझे तो कोई चिड़िया भी नहीं मानती।' यह अभानापादक आवरण खटक रहा था। मेरा यह आवरण मिटाने के लिए मेरे गुरुजी को भी कसम खानी पड़ी, लीला करनी पड़ी थी।

पूज्य गुरुदेव उपदेश देते तब तो लगता था : ''स्थूल शरीर मैं नहीं, सूक्ष्म शरीर मैं नहीं, कारण शरीर मैं नहीं, आनंदमय कोष भी मैं नहीं, मैं तो साक्षी हूँ, आनंदस्वरूप हूँ, ब्रह्म हूँ।'' ये सब बुद्धिपूर्वक मान लिया था, ध्यान में थोड़ा आनंद भी आता था लेकिन अभानापादक आवरण खटक रहा था। पूर्णता की कमी खटक रही थी।

सुबह में गुरुजी किसीको वेदांत का शास्त्र पढ़ने के लिए देते थे। गुरुजी अपने नियम करते और शास्त्र भी सुनते। बीच में पर्दा रहता था। कभी-कभी गुरुजी पर्दा हटा लेते थे। कमरे में हम ४-५ साधक ही रहते।

एक दिन गुरुजी को आ गयी मौज... गुरुजी सीधा प्रहार नहीं करते थे, सांकेतिक भाषा में कहते थे। गुरुजी ने कहा : ''कुछ लोग बेचारे...'' ऐसा कहकर गुरुजी ने मेरी ओर देखा। मैं समझ गया कि इशारा मेरी ओर है। उस दिन हम तीन ही थे।

गुरुदेव ने कहा : ''कुछ बेचारे यह सोचते रहते हैं कि हूँ तो मैं ब्रह्म, शरीर मैं नहीं हूँ लेकिन मेरे गुरुजी को जितने लोग जानते हैं, उतने मुझे नहीं जानते। गुरुजी के अनुभव में और मेरे अनुभव में कुछ कमी है। वे कमी है की बात मानकर कमी बना लेते हैं। मुझमें दोष हैं, मुझमें दोष हैं ऐसा करके दोष बना लेते हैं। मैं ऐसे लोगों को क्या कहूँ ?''

गुरुदेव के पास में ही गीता-ग्रंथ रखा था, उसे उठाते हुए उन्होंने कहा : ''लीलाशाह सिर पर गीता रखता है और कसम खाता है कि जो लीलाशाह है वह तू है, जो तू है वही लीलाशाह है। अब तो मान ले, भाई !''

कृपालु गुरुदेव ने इस तरह मेरे अभानापादक आवरण को भी मार भगाया।

यह अभानापादक आवरण हटाने का एक तरीका है शास्त्रीय तरीका। भक्ति करते-करते फिर भीतर से भगवान की आवाज आयेगी : ''तू किसको खोजता है ? मैं तेरे साथ हूँ, तू मेरा स्वरूप है।'' सोऽहं की ध्वनियाँ होने लगेंगी।

सनातन धर्म के जो पाँच प्रमुख देव हैं उन पाँचों में से किसी एक की भी भक्ति आप करें तो उनकी भक्ति में यह ताकत है कि वे आपका लौकिक मनोरथ तो पूरा करते हैं, लेकिन यदि आप किसी लौकिक कामना के बिना ही देवों की भक्ति करते हैं तो वे देव आपको अलौकिक आत्मसुख देनेवाले संत के पास पहुँचा देते हैं।

फिर चाहे कोई शैव उपासक हो और शिव की उपासना करता हो, चाहे वैष्णव हो और भगवान विष्णु के अवतारों की उपासना करता हो, शाक्त उपासक हो और लक्ष्मी माता, सरस्वती देवी, नवदुर्गा या गायत्री आदि की उपासना करता हो चाहे गाणपत्य हो और गणपतिजी की उपासना करता हो, चाहे सूर्य उपासक हो। इन पंच देवों की उपासना में बड़ा बल है। इनकी उपासना आपको संतों से, सद्गुरुओं से, सच्चे महापुरुषों से मिला देती है।

असत्त्वापादक आवरण सत्संग से मिटता है और अभानापादक आवरण साधना एवं गुरुकृपा से मिटता है। दोनों आवरण हट जाने से आत्मा बेपरदा हो जाता है, ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है। आम आदमी को, निगुरे को दोनों आवरण होते हैं। भक्त को, साधक को एक ही आवरण होता है और ज्ञानवान को दोनों ही आवरण नहीं रहते। अपने आत्मा-परमात्मा के अनुभव में ज्ञानी निरावरण होते हैं। ३३ करोड़ देवता और ब्रह्मा, विष्णु, महेश मिलकर भी ज्ञानी के अनुभव को अन्यथा नहीं कर सकते! ज्ञानी की ऐसी ज्ञाननिष्ठा होती है! भावना बदल जाती है, मान्यता भी बदल जाती है लेकिन ज्ञान नहीं बदलता, तत्त्वज्ञान नहीं बदलता।

जैसे, यह रूमाल है। इसका आपको ज्ञान हो गया कि इस रंग का है, इतना बड़ा है। अब अगर इसको छिपा दिया जाय और आपको अन्य बातों में लगा दिया जाय तो इसका अदर्शन हो सकता है लेकिन इसका अज्ञान नहीं हो सकता है। आपसे इसका ज्ञान कोई छीन नहीं सकता है। रूमाल का तो अदर्शन होगा, विस्मृति भी होगी परंतु परमात्मा का एक बार दर्शन हो जाने पर, एक बार उसका ज्ञान हो जाने पर, एक बार उसके निरावरण हो जाने पर फिर उसका अदर्शन और उसकी विस्मृति ज्यादा समय नहीं टिकती। ऐसा दिव्य है उस परमात्मा का अनुभव!

*

सब दुःखों का नाशक : आत्मविचार

❊ संत श्री आसाराम बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है :

''हे रामजी ! एक आत्मदृष्टि ही सबसे श्रेष्ठ है, जिसे पाने से सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं और परमानंद प्राप्त होता है। यह आत्मचिंतन सब दुःखों का नाशक है। यह चिरकाल से तीनों तापों से तपे और जन्म-मरण से थके हुए जीवों के श्रम को दूर करता है और तपन मिटाता है। अनर्थकारिणी, समस्त दुःखों की खान अविद्या को आत्मचिंतन ही नष्ट करता है।''

जप, स्मरण और ध्यान- ये सब अपनी-अपनी जगह पर ठीक हैं लेकिन आत्मविद्या का विचार अपनी जगह पर है। जप में जो मंत्र होगा उसकी आवृत्ति होते-होते रजो-तमोगुण क्षीण होगा, सत्त्वगुण की अभिवृद्धि होगी। स्मरण में बार-बार वृत्ति इष्ट की ओर जायेगी तो चित्तवृत्ति इष्टाकार बनेगी। एक ही जगह पर चित्त की वृत्ति स्थित करने का अभ्यास करना अथवा निःसंकल्प होने का अभ्यास करना ध्यान है।

यज्ञ, व्रत, तप, तीर्थ आदि बहिरंग साधन हैं। जप, स्मरण, ध्यान- ये अंतरंग साधन हैं, अन्तरात्मा के निकटवाले हैं। फिर भी आत्मविचार के आगे ये साधन भी बहिरंग हैं। आत्मविचार और ज्यादा अंतरंग है। अविद्या का नाश आत्मविचार से ही होता है।

सारे दुःखों की खान, सारे कष्टों का मूल अविद्या ही है। अविद्या कैसे ? जो पहले विद्यमान नहीं था, बाद में भी नहीं रहेगा और अभी भी नहीं की तरफ जा रहा है। ये सारा जगत, जगत के पदार्थ और जगत की परिस्थितियाँ अविद्या के कारण ही सत्य भासती हैं। अगर अविद्या हट जाय तो सब दुःख सदा के लिए नष्ट हो जायें।

अविद्या कैसे हटेगी ? अविद्या हटेगी विद्या से, अंधेरा हटेगा उजाले से। आत्मविद्या का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करें तो सब दुःखों की मूल अविद्या हट जाती है और जीवात्मा को अपने परमेश्वर-स्वभाव का ज्ञान हो जाता है।

ऐसा नहीं कि खूब ध्यान-भजन करेंगे, जप-तप करेंगे तो भगवान आ जायेंगे और अविद्या मिट जायेगी ! हाँ, इनसे भगवान तो आ सकते हैं लेकिन अविद्या नहीं मिटती है। भगवान जिससे भगवान हैं और भगवान को बुलानेवाला भक्त जिससे भक्त है उस असली स्वरूप को पहचानना ही विद्या है।

भगवान के असली स्वरूप को न पहचानकर भक्त भगवान से कुछ माँगता है और भगवान मर्यादा के अनुकूल, नीति के अनुकूल जो कुछ दे सकते हैं, वह भक्त को दे देते हैं। इससे माँगनेवाला तो मँगता (भिखारी) बना रहता है और देनेवाला दाता बन जाता है। माँगनेवाला डरता रहता है कि देनेवाला कभी रूठ न जाय ! इस प्रकार अविद्या तो बनी ही रहती है और जब तक अविद्या रहेगी तब तक भय भी बना रहेगा।

जब आत्मज्ञान सुनेंगे, उसका मनन करके उसमें शांत होते जायेंगे, मौन होते जायेंगे तो आत्मविषयिणी बुद्धि पैदा होगी। आत्मविषयिणी मति पैदा होने से अविद्या हट जायेगी। अविद्या हटते ही जीव को अपने शिवस्वरूप का बोध हो जायेगा और वह उसीमें जग जायेगा।

रामजी बोले : ''हे मुनीश्वर ! आपका उपदेश दृश्यरूपी तृणों का नाशकर्त्ता दावानल के समान है। हे मुनीश्वर ! आपके उपदेश से मैंने पाँच विकल्प विचारे हैं। प्रथम यह कि जगत मिथ्या है और इसका स्वरूप अनिर्वचनीय है। दूसरा यह कि जगत आत्मा में आभासरूप है। तीसरा यह कि इसका स्वभाव परिणामी

है। चौथा यह कि जगत अज्ञान से उपजा है और पाँचवा यह कि जगत अनादि और अज्ञानपर्यंत है। ज्ञान होते ही चित्त से उसका प्रभाव बाधित हो जाता है।''

जगत अनिर्वचनीय है का मतलब है, इसको सत्य नहीं कह सकते क्योंकि सत्य हो तो सदा हो। इसको असत्य भी नहीं कह सकते क्योंकि असत्य हो तो दिखे नहीं। इसलिए जगत को मिथ्या और अनिर्वचनीय कहा गया है।

जगत आत्मा में आभासरूप है अर्थात् जैसे जलाशय में चंद्रमा आभासरूप है, सूरज आभासरूप है, वैसे ही परब्रह्म परमात्मा में यह जगत आभासरूप है।

जगत परिणामी है अर्थात् बदलनेवाला है। कितना भी बढ़िया भोजन बनाकर रखो, दो-चार घंटे बाद देखो तो बासी हो जायेगा, सड़ना-गलना, परिणाम शुरू हो जायेगा। प्रत्येक वस्तु में क्षण-क्षण में परिवर्तन होता ही रहता है इसीलिए इसे परिणामी कहा गया है।

जगत अविद्या से भासता है और अनादि है। जगत लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब अथवा दस अरब वर्ष से चल रहा है, ऐसी बात नहीं है और लाख, दस लाख वर्ष बाद बंद हो जायेगा, ऐसी बात भी नहीं है। यह अनादि है और अज्ञानपर्यंत है। जब परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार होता है तब इसकी सत्यता शांत हो जाती है। इसलिए अज्ञान को मिटाकर आत्मज्ञान पाना ही सार है।

जगत मिथ्या है, आभासरूप है, परिणामी है, अविद्या का कार्य है और अनादि, अज्ञानपर्यंत है लेकिन भगवान सत्य हैं, शाश्वत हैं, एकरस हैं, ज्ञानस्वरूप हैं और सारे गुण उन्हीं में से स्फुरते हैं। जैसे, सूर्य के अपनी जगह पर होते हुए भी धरती पर पेड़-पौधे पुष्ट हो जाते हैं, प्राणियों के शरीरों को जीवनीशक्ति मिलती है, ऐसे ही परमात्मा की सत्ता अपने-आपमें शांत है, उससे अंतःकरण में सारे सद्गुण स्फुरित होते हैं। वासना होती है तो द्वेष स्फुरित होता है और शुभ भावना होती है तो सद्गुण स्फुरित होते हैं, इन शुभाशुभ का मूल उद्गम-स्थान आप परमात्मा, साक्षी, चैतन्य है, उसको नहीं जानते और अविद्यमान जगत को सच्चा मानते हैं इसीलिए दुःखी हो रहे हैं। यदि आत्मविचार द्वारा एक बार भी इस जगत के मूल को, परमात्मा को जान लें तो जगत की सत्यता नष्ट हो जाती है और जगत की सत्यता नष्ट होते ही सब दुःख भी सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं।

जीवन का निखार कैसे हो ?

(अत्यधिक आपाधापी एवं कोलाहल से भरी मायानगरी मुंबई... वहाँ के लाखों-लाखों साधकों को जीवन की सही दिशा बताते हुए पूज्यश्री कहते हैं :)

भावशक्ति के साथ जब विचारशक्ति, क्रियाशक्ति, संयमशक्ति और संवेदनशक्ति का समन्वय होता है तब जीवन निखरता है।

केवल भावुकता से समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। भावुकता से समस्याएँ और विकरालरूप ले लेती हैं और प्रायः ऐसा होता भी है। केवल भावुकता नहीं, इसके साथ विचार और क्रियाशक्ति भी चाहिए।

कई बार न चाहते हुए भी व्यक्ति से ऐसे कार्य हो जाते हैं जो उचित नहीं होते। नहीं चाहते हैं कि बीड़ी पियें लेकिन पी लेते हैं, नहीं चाहते हैं कि अंडा खायें फिर भी खा लेते हैं, नहीं चाहते हैं कि दुःखी हो जायें लेकिन हो जाते हैं, नहीं चाहते हैं कि लापरवाही हो फिर भी हो जाती है, नहीं चाहते हैं कि भयभीत हो जायें लेकिन हो जाते हैं... कई लोग इस प्रकार के कार्यों को न करने की कसमें भी खाते हैं लेकिन कुछ देर के बाद फिर वही कार्य करने लग जाते हैं और बोलने लगते हैं कि 'क्या करें ? भगवान की मर्जी है...' इसमें भगवान की मर्जी नहीं, तेरी कमजोर भावुकता है। इसमें भगवान् का बल भी मिला दे, भाई !

'श्रीरामचरितमानस' के उत्तरकांड में भगवान श्री रामचंद्रजी के द्वारा नगरवासियों को बुलाने की

बात आती है । जिसमें नगरवासियों को बुलाकर, उनके साथ विचार-विमर्श करते हुए श्रीरामजी ने एक खास बात कही :

बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई । एहि आचरन बस्य मैं भाई ॥

यहाँ और अधिक तुम्हें क्या बताऊँ ? मैं कैसे वश होता हूँ सो सुन लो । सबका अंतरात्मारूप मैं कैसे तृप्त होता हूँ, वह समझ लो ।

बैर न बिग्रह आस न त्रासा । सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारंभ अनिकेत अमानी । अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा । तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥
मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह ।
ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह ॥

'न किसीसे वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे, न आशा रखे, न भय ही करे, उसके लिए सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं । जो कोई भी आरंभ नहीं करता अर्थात् फल की इच्छा से कर्म नहीं करता, जिसका अपना कोई घर नहीं है अर्थात् जिसकी घर में ममता नहीं है, जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो निपुण (भक्ति करने में दक्ष) और विज्ञानवान है, सत्संग से (संतजनों के संग से) जिसे सदा प्रेम है, जिसके मन में सब विषय यहाँ तक कि स्वर्ग और मुक्ति भी तृण के समान हैं, जो भक्ति के पक्ष में हठ करता है पर दूसरे के मत का खंडन करने की मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है, जो मेरे गुणसमूहों के और मेरे नाम के परायण है एवं ममता, मद और मोह से रहित है, उसका सुख वही जानता है जो परमात्मरूप परमानंदराशि को प्राप्त है ।'

(श्रीरामच० उत्तर का० ४५, २,३,४ एवं ४६)

जिसको कथा में, सत्संग में रुचि है, जो सार बात समझते हुए ज्ञान से अपनी बुद्धि को निखारता है, जो किसीके लिए वैर नहीं रखता, न किसीके कुप्रचार का शिकार बनता है, वह उत्तम पुरुष है । ऐसा उत्तम पुरुष सबको सुखमय देखना चाहता है, सबका मंगल चाहता है और सबके प्रति करुणा का भाव रखता है ।

इच्छाएँ, वासनाएँ और किसीकी टाँग खींचने का भाव उसके चित्त में नहीं होता । वह निर्दोष और पाप से रहित होता है । वह व्यवहार में दक्ष होता है, किसीके बहकावे में, आवेश में, भावुकता में अथवा दबाव में नहीं आता ।

वह सज्जनों से प्रीति करता है, जो अपने से अक्ल में, बुद्धि में, साधना में, भजन में, योग्यताओं में उन्नत हैं ऐसों से वह प्रीति करता है और विषय-विकारों को तिनके की नाईं समझता है ।

कुछ भावुकों को सुनाया जाता है : 'यदि तुम रोज़े रखो, तुम नेक इंसान बनो, शराब पीना छोड़ दो तो तुम्हें बिस्त में हूरें (अप्सराएँ) मिलेंगी, शराब के चश्मे होंगे, खूब ऐश करना... ।' ये मात्र भावुकता की बातें हैं । यहाँ पर शराब छोड़ें, यह बात अच्छी है लेकिन बिस्त में शराब के चश्मे होंगे और हूरें मिलेंगी, तो क्या रोज़ा इन बुरी चीजों को पाने के लिए रखा जाय ? रोज़ा तो खुदाताला का आनंद उभारने के लिए रखना चाहिए । इसी प्रकार पूनम का व्रत, एकादशी का व्रत रखें तो ईश्वरीय आनंद को उभारने के लिए ।

एक युवक गया किसीसे दीक्षा लेने । दीक्षा देनेवाले ने फूँक मारी और कहा : ''जा, तुझे बिस्त दे दिया । अब ला दक्षिणा ।''

युवक चतुर और समझदार था । उसने सोचा दक्षिणा तो श्रद्धा से दी जाती है । वह बोला : 'अभी तो नहीं है, बाद में देखते हैं ।'

दीक्षा देनेवाले गुरु ने कहा : ''अरे, तेरे को बिस्त दे दिया फिर भी दक्षिणा नहीं दे रहा है ?''

युवक बुद्धिमान था । उसने एक प्रदक्षिणा की, फूँक मारी और कहा : ''जाओ, अमेरीका आपको दिया ।'' इसी प्रकार दूसरी बार में यूरोप और तीसरी बार में एशिया दे दिया ।

गुरु ने कहा : ''अमेरीका, यूरोप और एशिया क्या तेरे बाप का है ?''

तब युवक ने कहा : ''क्या बिस्त आपके बाप का है कि यहाँ बैठे-बैठे मुझे दे दिया ?''

कहने का तात्पर्य यह है कि अकेली भावुकता से काम नहीं चलता । भावुकता के साथ-साथ विचार भी चाहिए और अकेले विचार से भी काम

होती।'. हर साधक इस दशा में आता ही है।

सुकरात बड़े बेचैन रहते थे। सुकरात से किसी मित्र ने कहा : ''तुम इतने बेचैन रहते हो उसकी अपेक्षा तो यह सुअर पत्नी, पुत्रादिसहित नाले में पड़ा है, बड़े आनंद से जी रहा है, उसको कोई चिंता नहीं है। चिंतित सुकरात होने के बजाय निश्चिंत सुअर होना कहीं अधिक अच्छा है।''

सुकरात ने कहा : ''मैं बेवकूफी से नाले में सुखी रहने की अपेक्षा, निश्चिंत सुअर होने की अपेक्षा छटपटानेवाले सुकरात के जीवन को अधिक पसंद करूँगा क्योंकि यह छटपटाहट मुझे परमात्म-द्वार तक पहुँचा देगी।''

जो हतभागी होते हैं, मंदभागी होते हैं वे तो संसार को सार समझकर उससे चिपके रहते हैं और उसमें से कुछ मिलता है तो अपने जीवन को धन्य-धन्य मान लेते हैं, लेकिन साधक उसमें चिपकता नहीं है और यदि उसे कुछ मिलता है तब भी वह सोचता है कि आखिर क्या ? उसे संसार में रस नहीं आता है।

जो भजन तो करता है, जप भी करता है लेकिन भगवद्रस में पहुँचा नहीं है वह बेचारा संसार की जवाबदारियाँ, प्रलोभन या सुख-दुःख आने पर हिल जाता है, क्योंकि जप के साथ उसने ध्यान का माहात्म्य नहीं जाना। कोई जप तो करता है लेकिन ध्यान द्वारा उसने भीतर का रस नहीं पाया तो उसे संसार का रस आकर्षित कर देगा। जिसने भीतर के निर्दुःखपने का स्वाद नहीं लिया, उसे संसार के दुःख हिला देते हैं। यदि हम सुख-दुःख में हिल जाते हैं तो समझना चाहिए कि ध्यान-ज्ञान के प्रसाद में अभी पूर्ण स्थिति नहीं हुई। अभी तक वह प्रसाद नहीं मिला है, जिससे सब दुःखों की निवृत्ति होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आता है :

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

'प्रसाद से अर्थात् अंतःकरण की प्रसन्नता से संपूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले योगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।' *(गीता : २.६५)*

जिन प्यारों पर सद्गुरुओं की अहैतुकी कृपा होती है, वे ही बुलाये जाते हैं अर्थात् जिनके पुण्य परिपक्व होते हैं और जिन पर परमात्मा की विशेष कृपा होती है, वे ही ऐसे प्रसाद की महफिल में बुलाये जाते हैं। औरों का इस महफिल में प्रवेश नहीं होता।

यदि भगवान की विशेष करुणा-कृपा होती है तो साधन-भजन की जगह नजदीक लगती है, भगवान नजदीक लगते हैं और यदि हम भगवान की विशेष कृपा के पात्र नहीं होते तो भोग नजदीक लगते हैं, भगवान दूर लगते हैं।

ईश्वरीय कृपा तो सब पर है लेकिन जो ईश्वर के लिए छटपटाता है उस पर उनकी विशेष कृपा होती है। जो ईश्वर के लिए काम करता है उस पर ईश्वर की विशेष कृपा होती है। जो भोग के लिए, वाहवाही के लिए, संसार के लिए काम करता है उस पर संसार की कृपा होती है और संसार की कृपा यही है कि वह दुःख बढ़ाता है। जितना संसार से प्रेम बढ़ेगा उतना दुःख बढ़ेगा और जितना भगवान से प्रेम बढ़ेगा उतना अंतरंगसुख, सच्चा सुख बढ़ेगा।

साधक के जीवन में एक तरफ उसे संसार खींचता है तो दूसरी तरफ परमात्मरस खींचता है। साधक बेचारा सीमा पर है। जब वह संसारियों का संग करता है और संसार की तरफ जाता है तो अशांत होता है और भगवान की तरफ जाता है तो आनंद का अनुभव करता है।

वस्तुतः देखा जाय तो संसार में जो सुख दिखता है वह सुख है ही नहीं। जैसे, मूर्ख कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है और उसके मसूढ़ों से खून निकलने लगता है तो उसीके स्वाद में वह सुख मानता है। अगर उसको समझ में आ जाय कि इसमें कोई सार नहीं है तो वह हड्डी क्यों चबायेगा ? ऐसे ही अगर मनुष्य को समझ में आ जाय कि संसार में जो सुख दिखता है वह वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति का सुख नहीं अपितु अपने भीतर का ही सुख है तो वह उनमें क्यों फँसेगा ?

एक बार भी यदि भीतर का सुख प्रगट हो जाय तो संसार के सुख कोई प्रभाव नहीं डाल सकते।

हम लोग जप, तप, देवदर्शन आदि तो करते हैं लेकिन देवदर्शन जिससे किया जाता है उसमें गोता नहीं मारते, इसीलिए संसार का प्रभाव हमारे चित्त से दूर नहीं होता और संसार का प्रभाव यह है कि वह हर्ष और शोक देता है।

आनंद तो संसार में है ही नहीं। सुख तो संसार में है ही नहीं। हर्ष को ही हमने सुख मान लिया है। हमें सच्चे सुख का पता ही नहीं है इसीलिए हम लोग हर्ष को सुख समझ बैठे हैं। जितना हर्ष होता है उतना ही शोक भी बढ़ता है।

आज हम हर्ष के साथ बह जाते हैं, इसीलिए जीवन में शोक भी उतनी ही तेजी से आता है। पहले हर्ष को मूल्य नहीं दिया जाता था, भीतर की विश्रांति को मूल्य दिया जाता था। हमारे परदादे जितने प्रसन्न रहते थे, जितनी ईमानदारी से जीते थे और जितने तंदुरुस्त रहते थे, उतनी हमारे दादाओं के पास योग्यताएँ नहीं थीं। हमारे दादाओं के पास जितनी योग्यताएँ थीं उतनी हमारे पिताओं के पास नहीं रहीं। हमारे पिताओं के पास जितनी योग्यताएँ हैं उतनी हमारे पास नहीं हैं और हमारे पास जितनी सहनशक्ति और भीतर की शांति है उतनी अपने बच्चों के पास हम नहीं देख पाते क्योंकि हमारे बच्चों के पास हर्ष के जितने अधिक साधन आये उतने वे अशांत हो गये, उतने वे शोकातुर हो गये।

संसार का जो सुख है, वह वास्तव में सुख नहीं है, हर्ष है। सुविधाओं को हमने सुख मान लिया है। सुविधाएँ हर्ष दे सकती हैं, सुख नहीं दे सकती। सुविधाओं का औषधवत् उपयोग किया जाय तो ठीक है। सुख तो भीतर का खजाना है। इसीको भगवान श्रीकृष्ण ने कहा : **'प्रसादे सर्वदुःखानाम्...।'** उस प्रसाद से सब दुःख दूर होते हैं।

संसार में सब दुःख दूर करने की ताकत नहीं है। पूरा संसार मिलकर भी एक आदमी को पूरा सुख नहीं दे सकता और सारा संसार मिलकर भी एक आदमी के सब दुःख दूर नहीं कर सकता। चाहे फिर वह किसी भी पद पर पहुँच जाय लेकिन प्रकृति वहाँ उसे ठहरने नहीं देगी।

सारी दुनिया में आपने पहलवानों में पहला स्थान पा लिया लेकिन फिर क्या ? आखिर तो मृत्यु झपेट लेगी। पूरे विश्व में आप अच्छे विद्वान घोषित हो गये लेकिन मृत्यु का झटका आपकी सारी विद्वता को झपेट लेगा। सारे विश्व में आप धनवानों में पहले नंबर पर हो गये लेकिन आखिर क्या ? संत नरसिंह मेहता ने कहा है :

ज्यां लगी आत्मतत्त्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।

अर्थात्

जब तक आत्मा को नहीं पहचाना, तब तक झूठी हैं सब साधना।

दुनिया के पदों को पाने की सारी उपलब्धियों, योग्यताओं को मृत्यु छीन लेती है लेकिन आत्मज्ञान पाने की जो साधना है वह तो बेड़ा पार कर देती है। आत्मज्ञान आपको तो निहाल कर देता है लेकिन आपकी मीठी निगाहें जिन पर पड़ती हैं उनको भी खुशहाल कर देता है। आत्मज्ञान की ऐसी महिमा है ! अतः ऊँचा लक्ष्य बनायें। हर्ष-शोक में बह न जायें। व्यर्थ के शोक व चिंता में समय न गवाँयें... हरि ॐ तत्सत् और सब गपशप...

*

अगर सावधानी से छः महीने तक ठीक ढंग से उपासना करे, तत्त्वज्ञानी सद्गुरु के ज्ञान को विचारे तो उससे अद्भुत लाभ होने लगता है। लाबयान ऊँचाई के सामर्थ्य का अनुभव करने लगता है। संसार का आकर्षण टूटने लगता है। उसके चित्त में विश्रान्ति आने लगती है। संसार के पदार्थ उससे आकर्षित होने लगते हैं। फिर उसे रोजी-रोटी के लिए, सगे-सम्बन्धी, परिवार-समाज को रिझाने के लिए नाक रगड़ना नहीं पड़ता। वे लोग ऐसे ही रीझने को तैयार रहेंगे। केवल छः महीने की सावधानी पूर्वक साधना... सारी जिन्दगी की मजदूरी से जो नहीं पाया वह छः महीने में पा लेगा। लेकिन सच्चे साधक के लिए तो वह भी तुच्छ हो जाता है। उसका लक्ष्य है ऊँचे-से ऊँचा साध्य पा लेना, आत्म-साक्षात्कार कर लेना।

(आश्रम की 'साधना में सफलता' पुस्तक से)

सच्चा बड़प्पन किसमें ?

(पूज्यश्री के ये वचन 'विनोद में वेदान्त' कैसेट से संकलित हैं ।)

टॉलस्टॉय बड़े प्रसिद्ध तत्त्वचिंतक थे । उनका जीवन बड़ा सादगीपूर्ण था ।

एक बार वे रेलवे स्टेशन पर खड़े थे । इतने में एक महिला वहाँ आयी । टॉलस्टॉय के सादे वस्त्र देखकर उसने उन्हें एक मजदूर समझा एवं अपने पास बुलाकर कहा :

''ऐ मजदूर ! यह चिट्ठी लो और सामने होटल में मेरे पति बैठे हैं उन्हें दे आओ । मैं तुमको दो कोपेक (रूस की मुद्रा) दूँगी ।''

टॉलस्टॉय चिट्ठी लेकर उसके पति को दे आये और उस महिला से दो कोपेक लेकर जेब में रख लिए । फिर खड़े-खड़े गाड़ी का इंतजार करने लगे । इतने में कोई बड़ा आदमी आया और टॉलस्टॉय के साथ बड़े आदर से बातचीत करने लगा । टॉलस्टॉय के लिए वह बड़े मानवाचक शब्दों का उपयोग कर रहा था और बड़े आदर से उनके सामने पेश आ रहा था ।

यह देखकर उस महिला को बड़ी हैरानी हुई : 'इतना बड़ा आदमी एक मजदूर का इतना आदर कर रहा है ! आखिर यह मजदूर है कौन ?' उस बड़े आदमी की बातों ने उस महिला के मस्तिष्क को चकरा दिया । इधर-उधर से पूछकर उसने पता लगा लिया : 'सादे वेश में दिखनेवाले ये व्यक्ति और कोई नहीं, प्रसिद्ध तत्त्वचिंतक टॉलस्टॉय हैं !'

अब तो उस महिला को बड़ा पश्चाताप होने लगा कि इतने महान व्यक्ति को उसने मजदूर समझकर चिट्ठी देने का काम सौंपा ? वह टॉलस्टॉय के पास जाकर माफी माँगने लगी :

''मुझे माफ कर दीजिये । इतने सादे कपड़ों में आपके जैसे महापुरुष को देखकर मैं पहचान न पायी । आप मुझे क्षमा कर दें ।''

टॉलस्टॉय ने कहा : ''कोई बात नहीं ।''

महिला : '' मैंने आपको दो कोपेक मजदूरी दी थी, वह मुझे वापस करने की कृपा करें ।''

टॉलस्टॉय हँस पड़े और बोले : ''वह तो मेरे पसीने की कमाई है । मैंने मेहनत करके जो दो कोपेक कमाये हैं, वह तो नहीं दूँगा ।''

यह सुनकर वह महिला बड़ी सकुचा गयी एवं मन-ही-मन अपनी गलती के लिए पश्चाताप करने लगी ।

इतने बड़े तत्त्वचिंतक की कितनी सहजता और सादगी !

बड़ा आदमी वह नहीं है जो छोटे काम करने से डरे । जो छोटा काम करने से डरता है वह तो बहुत छोटा आदमी है । आडंबर से कोई बड़ा आदमी नहीं बन जाता । बड़ा आदमी तो वह है जिसे झाड़ू-बुहारी करने में भी संकोच न हो, अपना सब काम स्वयं करने में कोई संकोच न हो और सत्य कहने में भी कोई संकोच न हो । जैसे, गाँधीजी थे ।

भगवान श्रीराम और लक्ष्मण गुरुजी की पैरचंपी करते थे । भगवान श्रीराम गुरुजी की गाय के लिए घासचारे और पानी की व्यवस्था करते थे । भैया लक्ष्मण गुरु-आश्रम की साफ-सफाई करते थे तथा रखवाली भी करते थे । भरत और शत्रुघ्न भी गुरुजी के दैवीकार्य में हाथ बँटाते थे । कहाँ तो सम्राट दशरथ के पुत्र श्रीरामसहित चारों भाई और कहाँ गुरु वशिष्ठजी के आश्रम की साफ-सफाई आदि की सेवा खोज लेते थे ! उन्हें कोई भी कार्य करने में संकोच न था, इसीलिए तो वे बड़े हैं ।

केवल बड़े काम करने से कोई बड़ा नहीं हो जाता । सच्चा बड़प्पन तो है नम्रता, सादगी, सच्चाई, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि सद्गुणों में... और इनसे भी बड़ा वह है जो अपने स्वरूप में, अपने

आत्मभाव में रहता है। बाहर से यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी भीतर से अपने स्वरूप में जिनकी निष्ठा है, वे आत्मरामी पुरुष ही बड़े हैं। जो अपने कर्त्तव्य तत्परता से पूर्ण करते हैं फिर भी अकर्त्तापन में स्थित रहते हैं, वे ब्रह्मवेत्ता सबसे बड़े हैं।

*

हृदय-परिवर्तन

(पुण्यात्माओं के जीवन-प्रसंगों के माध्यम से सत्प्रेरणा देने हेतु अपनी सहज-सरल भाषा में पूज्यश्री कह रहे हैं :)

रविन्द्रनाथ टैगोर को मारने के लिए एक कातिल गुंडे को भेजा गया। रात्रि के दो बजे वह खिड़की तोड़कर टैगोर के कमरे में घुस गया। सफेद कागज की छाती पर मोती के दाने जैसे सुंदर अक्षर लिखे जा रहे थे... टैगोर के सामने जाकर उसने चमचमाता छुरा दिखाया और कहा : ''ऐ कवि के बच्चे ! बहुत दिनों से तेरा इंतजार था। अपने इष्ट का स्मरण कर ले। अब आखिरी घड़ियाँ हैं।''

टैगोर न डरे, न घबराये वरन् बड़ी शांति से बोले : ''मित्र ! अगर थोड़ा समय दे सको तो आधा घंटा दे दो। अभी एक सुंदर कविता का भाव आ रहा है। मैं अपनी यह कविता पूरी कर लूँ, ईश्वर की सेवा हो जाय फिर आप अपनी इच्छा पूरी कर लेना।''

टैगोर की निर्भयता एवं आत्मदृष्टि ने उस कातिल गुंडे को आधे घंटे का समय देने के लिए मजबूर कर दिया। अपने छुरे को कवर में डालकर वह थोड़ी देर कमरे में इधर-उधर घूमा और जिस खिड़की से आया था उसी खिड़की से वापस चला गया।

टैगोरजी की कविता पूरी हुई। टैगोरजी राह देखते रहे, १ घंटा... २ घंटे... ३ घंटे... बीत गये, सुबह हो गयी... सूर्योदय भी हो गया। टैगोरजी टहलने के लिए निकले तब भी रास्ते में वह न मिला। १ दिन, २ दिन... ऐसा करते-करते आठवें दिन जब वे प्रातःकाल सैर करने को निकले तब सामने से आकर उस कातिल गुंडे ने पैर पकड़े :

''कविवर ! मुझे पहचाना ?''

''हाँ, भैया ! मैंने पहचाना। मैंने तो उस दिन सिर्फ आधे घंटे की मोहलत माँगी थी और आप आज तक पधारे नहीं ?''

''कविवर ! आपने मुझे माफ कर दिया न ?''

''माफी किस बात की ?''

''मुझे माफ कर दो, कविवर ! आपकी हत्या करने का मुझे ठेका मिला था। आया तो था मैं आपकी हत्या करने के लिए, लेकिन ऐसे ही वापस चला गया। आपने उस दिन ऐसा कौन-सा जादू किया ?''

''भैया ! मैंने तो कोई जादू नहीं किया था। मैंने तो सोचा कि आपके द्वारा मेरे प्रभु की चेतना ही यह काम करना चाहती है। जब सर्वत्र वही है तो आपमें भी तो वही है। इस भाव से मैंने प्रभु के रूप में आपसे प्रार्थना की थी और आप मान गये।''

कैसी थी टैगोरजी की प्रभुनिष्ठा ! सबकी गहरायी में वही परमात्मचेतना है, उनके इस भाव ने कातिल गुंडे का हृदय भी बदल दिया !

वास्तव में सबकी गहरायी में वही परमात्म-चेतना कार्य कर रही है। जो इस बात को जानता है वह सदा-सदा के लिए जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट जाता है।

*

विद्यार्थी का साहस

अंग्रेजों के शासनकाल की बात है :

कॉलेज के दो विद्यार्थी परीक्षा देकर लौट रहे थे। सिनेमाघर के पास बड़ी भीड़ जमा थी लेकिन सबके चेहरे मुरझाये हुए थे।

विद्यार्थी गोलवलकर शरीर से तो पतले-दुबले थे लेकिन साहसी और बुद्धिमान थे। उन्होंने सिनेमाघर के पास जाकर पता लगाया।

लोगों ने बताया : ''नई, बढ़िया फिल्म लगी थी। हम लोग सपरिवार देखने आये थे। फिल्म पूरी हुई तब सिनेमाघर के महिला-द्वार पर अंग्रेज पुलिस दारू पीकर खड़ी हो गयी है। हमारी बहू-बेटियाँ अंदर रह गयी हैं।''

गोलवलकर ने कहा : ''आप लोग अपनी बहू-

बेटियों को लाते क्यों नहीं ?''

तब उन लोगों ने दबे स्वर में कहा : ''उनका शासन चल रहा है। पुलिसवाले लोग जवान हैं और दारू पिये हुए हैं।''

गोलवलकर ने अपने साथी से कहा : ''चलो, इनकी मदद करें।''

साथी ने कहा : ''हमको क्या, छोड़ो इनको।''

वह साथी युवक पढ़ा-लिखा तो था लेकिन मानवीय संवेदना से हीन था। उस मूर्ख को अपने कर्त्तव्य का भान ही नहीं था कि अपने देशवासी लाचार होकर उन अंग्रेज गुंडों की पीड़ा सह रहे थे और वह 'हमको क्या ? हमारा क्या ?' कहकर अपने कर्त्तव्य से च्युत हो रहा था। देशवासियों से अपनेपन का भाव न होने के कारण वह मुसीबत से जूझने के बजाय दूर भाग रहा था।

मनुष्य-मनुष्य में एक-दूसरे के प्रति संवेदनशीलता नितांत आवश्यक है। जब तक हम एक-दूसरे को सहयोग नहीं करेंगे, तब तक हमारी उन्नति भी नहीं होगी। कम-से-कम हममें उस जटायु जैसी संवेदनशीलता तो होनी ही चाहिए जिसने एक पक्षी होने पर भी मानवता की रक्षा के लिए दुराचारी रावण का सामना करके सारे जनसमूह को संवेदना का संदेश दिया। जब एक निहत्था पक्षी भी संवेदना के भाव से युक्त होकर मानवता की रक्षा हेतु अपने प्राणों की बलि दे सकता है, तो हम मानव-मानव के प्रति संवेदना क्यों नहीं रखते ?

वह संवेदनहीन साथी तो चला गया लेकिन दुबले-पतले गोलवलकर ने, जैसे शेर हाथी पर गरजता है, वैसे ही अंग्रेज पुलिसवालों पर गरजते हुए कहा : ''चले जाओ।'' फिर उसने अंग्रेजों पर जोरदार छलांग लगायी... एक की छाती पर और दूसरे के सिर पर लात दे मारी... दोनों भाग खड़े हुए और तीसरे ने माफी माँगते हुए बहू-बेटियों को छोड़ दिया। वह साहसी विद्यार्थी बहू-बेटियों को सुरक्षित छुड़ाकर ले आया।

बाहर खड़े लोग उसके इस वीरतापूर्ण कार्य के लिए गद्‌गद होकर स्नेह और आशीर्वाद के वचनों की वर्षा करने लगे।

सबको सुखी देखने की भावना उस विद्यार्थी में थी। किसी भी देशवासी का कष्ट न देख सकनेवाले एवं साहस तथा बुद्धिमत्ता से परिपूर्ण यही विद्यार्थी गोलवलकर आगे चलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक बने और गुरु गोलवलकर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

*

सच्चा मित्र

धर्मराज युधिष्ठिर ने पितामह भीष्म से पूछा : ''पितामह ! जिसकी मृत्यु निकट आनेवाली हो, उसका परम हितैषी मित्र कौन है ? क्या यश उसका मित्र है ? क्या विद्या उसकी मित्र है ? क्या धन-दौलत उसके मित्र हैं अथवा कुटुंबी उसके मित्र हैं ?''

भीष्म पितामह : ''नहीं, राजन् ! जिसकी मृत्यु निकट हो उसके लिए दान ही उसका परम हितैषी मित्र है। कलियुग में वह जितना दान-पुण्य करेगा उतना ही उसका भविष्य उज्ज्वल होगा।''

युधिष्ठिर : ''महाराज ! धनवान तो दान कर लेगा, अपनी धन-संपदा और बुद्धि का परोपकार में सदुपयोग करके बुद्धियोग पायेगा लेकिन निर्धन क्या करे ?''

भीष्म पितामह : ''निर्धन धनवान को देखकर ईर्ष्या न करे, निर्धन धनवान की सुख-सुविधाएँ देखकर अपनी लालच न बढ़ाये बल्कि निर्धन अपनी वासना मिटाये और भगवान से प्रेम करे। धनवान अपनी वस्तुओं का भगवान के नाते सदुपयोग करे तो भगवत्प्रेम को प्राप्त होगा। निर्धन हो चाहे धनवान हो, पठित हो चाहे अनपढ़ हो, अपनी बुद्धि को योग में सब लगा सकते हैं अर्थात् भगवान से एकाकार कर सकते हैं और यही मनुष्य जीवन का फल है।''

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १०९ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया नवम्बर २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

मीरा की गुरुभक्ति

(मीरा की दृढ़ भक्ति को कौन नहीं जानता ? उन्हीं के कुछ पदों द्वारा, उनके जीवन-प्रसंग पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री कह रहे हैं :)

भक्तिमति मीराबाई का एक प्रसिद्ध भजन है :

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रे।
लोग कहें मीरा भई रे बावरी, सास कहे कुलनासी रे।
बिष को प्यालो राणाजी भेज्यो, पीवत मीरा हाँसी रे।
मैं तो अपने नारायण की, आपहि हो गइ दासी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिल्या अबिनासी रे।

एक बार संत रैदासजी चित्तौड़ पधारे थे। रैदासजी रघु चमार के यहाँ जन्मे थे। उनकी छोटी जाति थी और उस समय जातपाँत का बड़ा बोलबाला था। वे नगर से दूर चमारों की बस्ती में रहते थे।

राजरानी मीरा को पता चला कि संत रैदासजी महाराज पधारे हैं लेकिन राजरानी के वेश में वहाँ कैसे जायें ? मीरा एक मोची महिला का वेश बनाकर चुपचाप रैदासजी के पास चली जाती, उनका सत्संग सुनती, उनके कीर्तन और ध्यान में मग्न हो जाती।

ऐसा करते-करते मीरा का सत्त्वगुण दृढ़ हुआ। मीरा ने सोचा : 'ईश्वर के रास्ते जायें और चोरी-छिपे जायें ? आखिर कब तक ?' फिर मीरा अपने ही वेश में उन चमारों की बस्ती में जाने लगी।

मीरा को उन चमारों की बस्ती में जाते देखकर अड़ोस-पड़ोस में कानाफूसी होने लगी। पूरे मेवाड़ में कुहराम मच गया : 'ऊँची जाति की, ऊँचे कुल की, राजघराने की मीरा नीची जाति के चमारों की बस्ती में जाकर साधुओं के यहाँ बैठती है, मीरा ऐसी है... वैसी है...।' ननद उदा ने उसे बहुत समझाया :

''भाभी ! लोग क्या बोलेंगे ? तुम राजकुल की रानी और गंदी बस्ती में, चमारों की बस्ती में जाती हो ? चमड़े का काम करनेवाले चमार जाति के एक व्यक्ति को गुरु मानती हो ? उसको मत्था टेकती हो ? उसके हाथ से प्रसाद लेती हो ? उसको एकटक देखते-देखते आँखें बंद करके न जाने क्या-क्या सोचती और करती हो ? यह ठीक नहीं है। भाभी ! तुम सुधर जाओ।''

सासु नाराज, ससुर नाराज, देवर नाराज, ननद नाराज, कुटुंबीजन नाराज... उदा ने कहा :

मीरा मान लीजियो म्हारी, तने सखियाँ बरजे सारी।
राणा बरजे, राणी बरजे, बरजे सपरिवारी।
साधन के संग बैठ बैठ के लाज गँवायी सारी॥

'मीरा ! अब तो मान जा। तुझे मैं समझा रही हूँ, सखियाँ समझा रहीं हैं, राणा भी कह रहा है, रानी भी कह रही है, सारा परिवार कह रहा है... फिर भी तू क्यों नहीं समझती है ? इन संतों के साथ बैठ-बैठकर तू कुल की सारी लाज गँवा रही है।'

नित प्रति उठ नीच घर जाय कुलको कलंक लगावे।
मीरा मान लीजियो म्हारी तने बरजे सखियाँ सारी॥

तब मीरा ने उत्तर दिया :

तारयो पियर सासरियो तारयो मांह्य मौसाली सारी।
मीरा ने अब सद्गुरु मिलिया चरणकमल बलिहारी॥

'मैं संतों के पास गयी तो मैंने पीहर का कुल तारा, ससुराल का कुल तारा, मौसाल का और ननिहाल का कुल भी तारा है।'

मीरा की ननद उदा पुनः समझाती है :

तने बरज बरज मैं हारी भाभी ! मानो बात हमारी।
राणा रोस किया था ऊपर साधो में मत जारी।
कुल को दाग लगे है भाभी ! निंदा होय रही भारी॥
साधो रे संग बन बन भटको लाज गँवायी सारी।
बड़ घर में जनम लियो है नाचो दै दै तारी।
वर पायो हिंदुअन सूरज अब बिदल में कोई धारी।
मीरा गिरधर साध संग तज चलो हमारी लारी।
तने बरज बरज मैं हारी भाभी मानो बात हमारी॥

उदा ने मीरा को बहुत समझाया लेकिन मीरा

की श्रद्धा और भक्ति अडिग ही रही।

मीरा कहती है कि अब मेरी बात सुन :

मीरा बात नहीं जग छानी समझो सुघर सयानी।
साधु मात पिता हैं मेरे स्वजन, स्नेही, ज्ञानी ॥
संत चरण की शरण रैन दिन।
मीरा कहै प्रभु गिरधर नागर संतन हाथ बिकानी ॥

'मीरा की बात अब जगत से छिपी नहीं है। साधु ही मेरे माता-पिता हैं, मेरे स्वजन हैं, मेरे स्नेही हैं, ज्ञानी हैं। मैं तो अब संतों के हाथ बिक गयी हूँ, अब मैं केवल उनकी ही शरण हूँ।'

ननद उदा आदि सब समझा-समझाकर थक गये : 'मीरा ! तेरे कारण हमारी इज्जत गयी... अब तो हमारी बात मान ले।' लेकिन मीरा भक्ति में दृढ़ रही।

लोग समझते हैं कि इज्जत गयी किंतु ईश्वर की भक्ति करने पर आज तक किसीकी लाज नहीं गयी है। संत नरसिंह मेहता ने कहा भी है :

हरि ने भजता हजि, कोईनी लाज जतां नथी जानी रे...

मूर्ख लोग समझते हैं कि भजन करने से इज्जत चली जाती है। वास्तव में ऐसा नहीं है।

राम नाम के कारणे सब यश दीन्हो खोय।
मूरख जाने घटि गयो दिन दिन दूनो होय ॥

मीरा की कितनी बदनामी की गयी, मीरा के लिए कितने षड्यंत्र किये गये लेकिन मीरा अडिग रही तो मीरा का यश बढ़ता गया। आज भी लोग बड़े प्रेम से मीरा को याद करते हैं, उनके भजनों को गाकर अथवा सुनकर अपना हृदय पावन करते हैं।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

दीपावली संदेश

*** संत श्री आसाराम बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

रावण पर राम की विजय का अर्थात् काम प[र] राम की विजय का और अज्ञानरूपी अंधकार प[र] ज्ञानरूपी प्रकाश की विजय का संदेश देता है जगमगाते दीपों का उत्सव **'दीपावली।'**

भारतीय संस्कृति के इस प्रकाशमय पर्व की आप सभीको खूब-खूब शुभकामनाएँ... आप सभीक[े] जीवन ज्ञानरूपी प्रकाश से जगमगाता रहे... दीपावली और नूतन वर्ष की यही शुभकामनाएँ...

दीपावली का दूसरा दिन अर्थात् नूतन वर्ष का प्रथम दिन... जो वर्ष के प्रथम दिन हर्ष-दैन्य आदि जिस भाव में रहता है, वर्षभर उसका उसी भाव से बीतता है। 'महाभारत' में पितामह भीष्म महाराज युधिष्ठिर से कहते हैं :

यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर।
हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति वै ॥

'हे युधिष्ठिर ! आज नूतन वर्ष के दिन जो मनुष्य हर्ष में रहता है उसका पूरा साल हर्ष में जाता है और जो शोक में रहता है उसका पूरा साल शोक में ही व्यतीत होता है।'

अतः वर्ष का प्रथम दिन हर्ष से जाय, ऐसा प्रयत्न करें। वर्ष का प्रथम दिन दीनता-हीनता अथवा पाप-ताप में न जाय वरन् शुभ चिंतन में, सत्कर्मों में, प्रसन्नता में बीते ऐसा यत्न करें।

सर्वश्रेष्ठ तो यह है कि वर्ष का प्रथम दिन परमात्मचिंतन, परमात्मज्ञान और परमात्मशांति में जाय ताकि पूरा वर्ष वैसा ही हो। इसलिए दीपावली की रात्रि को वैसा ही चिंतन करते-करते सोना ताकि नूतन वर्ष की सुबह की पहली क्षण भी वैसी ही हो। दूसरी, तीसरी, चौथी... क्षणें भी वैसी ही हों। वर्ष का प्रथम दिन

इस प्रकार से आरंभ करना कि पूरा वर्ष भगवन्नाम-जप में, भगवान के ध्यान में, भगवान के चिंतन में बीते...

नूतन वर्ष के दिन अपने जीवन में एक ऊँचा दृष्टिबिंदु होना अत्यंत आवश्यक है। जीवन की ऊँचाइयाँ मिलती हैं, दुर्गुणों को हटाने और सद्गुणों को बढ़ाने से लेकिन सद्गुणों की भी एक सीमा है। सद्गुणी स्वर्ग तक जा सकता है, दुर्गुणी नरक तक जा सकता है। मिश्रितवाला मनुष्य जन्म लेकर सुख-दुःख की, पाप-पुण्य की खिचड़ी खाता है।

दुर्गुणों से बचने के लिए सद्गुण अच्छे हैं लेकिन 'मैं सद्गुणी हूँ' इस बेवकूफी का भी त्याग करना पड़ता है। श्रीकृष्ण सबसे ऊँची बात बताते हैं, वे सबसे ऊँची निगाह देते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं :

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥

'हे अर्जुन ! जो पुरुष सत्त्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होने पर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है।' *(गीता : १४.२२)*

सत्त्वगुण प्रकाश है, रजोगुण प्रवृत्ति है और तमोगुण मोह है। उसमें ज्ञानी पड़ता भी नहीं और उससे निकलता भी नहीं, न उसको चाहता है और न उससे भागता है- यह बहुत ऊँचा दृष्टिबिंदु है।

'हमारे जीवन में इसकी प्रधानता है... उसकी प्रधानता है...' यह सब लौकिक दृष्टि है। सच्चाई तो यह है कि **सबके जीवन में सब दुःखों से निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति की ही प्रधानता है।**

इसके लिए सुबह नींद में से उठते समय अपने संकल्प में विकल्प न घुसे ऐसा संकल्प करें। आपने कोई ऊँचा इरादा बनाकर संकल्प किया है तो उस संकल्प में कोई विकल्प न घुसे इसकी सावधानी रखें।

संकल्पों की शक्ति 'एटॉमिक पावर' से, अणुशक्ति से भी ज्यादा महत्त्व रखती है और भारतीय संस्कृति ने इसे अच्छी तरह से महसूस किया है। इसीलिए हमारे ऋषियों ने दीपावली और नूतन वर्ष जैसे पर्वों का आयोजन किया है ताकि मनुष्य आपसी राग-द्वेष भूलकर एवं परस्पर सौहार्द्र बढ़ाकर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहे...

राग-द्वेष में मलीन संकल्प होते हैं जो बंधनकारी होते हैं। राग आकर चित्त में एक रेखा खींच देता है तो द्वेष आकर दूसरी रेखा खींच देता है। इससे चित्त मलीन हो जाता है। इसीलिए परस्पर के राग-द्वेष को मिटाने के लिए 'नूतन वर्षाभिनंदन' की व्यवस्था का आयोजन किया गया है।

शास्त्रों में आता है : **विदूषानां किं लक्षणं ?** 'पूर्ण विद्वान, पूर्ण बुद्धिमान के लक्षण क्या हैं ?' **अदृढ रागद्वेषः।** 'जिसके चित्त में राग-द्वेष दृढ़ नहीं है वह विद्वान है।'

निम्न व्यक्तियों का राग-द्वेष होता है, लोहे पर लकीर के समान। मध्यम व्यक्ति का राग-द्वेष होता है, धरती पर लकीर के समान। भक्त एवं जिज्ञासु का राग-द्वेष होता है, बालू पर लकीर के समान और ज्ञानी के बाह्य व्यवहार में हल्का-फुल्का राग-द्वेष दिखता भी है पर चित्त में देखो तो कुछ नहीं।

इस नूतन वर्ष के दिन हम भी यह संकल्प करें :

'हमारा चित्त किसी बाह्य वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति में न फँसे।' क्योंकि बाह्य जो कुछ भी है, प्रकृति का है। उसमें परिवर्तन अवश्यंभावी है लेकिन परिवर्तन जिससे प्रतीत होता है वह परमात्मा एकरस है और वह अपने से दूर नहीं है। वह पराया नहीं है और उसका हम कभी त्याग नहीं कर सकते हैं।

संसार की किसी भी परिस्थिति को हम रख नहीं सकते हैं और अपने आत्मा-परमात्मा का हम त्याग नहीं कर सकते हैं। जिसका त्याग नहीं कर सकते उसको जानने का इरादा पक्का कर लें और जिसको सदा रख नहीं सकते उस संसार से अहंता-ममता मिटाने का इरादा पक्का कर लें, बस। अगर इतना कर लिया तो फिर आपके कदम ठीक जगह पर पड़ेंगे।

फिर सफलता का गर्व न होगा : 'महाराज ! मुझे यह सफलता मिली ... मुझे वह सफलता मिली।' बल्कि सारी सफलताएँ जहाँ से पैदा होती हैं वहाँ आपका चित्त रमण करेगा। फिर ऐहिक सफलताएँ तो क्या, ऋद्धि-सिद्धियाँ भी आकर अपने खेल दिखायेंगी तो आपको तुच्छ लगेगा। इस अवस्थावाले के लिए उपनिषद् ने कहा :

यो एवं ब्रह्मैव जानाति तेषां देवानां बलिंविहति।

'जो ब्रह्म को जानता है उस पर देवता तक कुर्बान जाते हैं।'

श्रीकृष्ण और उनके प्रियपात्र प्रतिदिन प्रातः

ऊँचा चिंतन करके ही धरती पर पैर रखते थे, बिस्तर का त्याग करते थे। इस नूतन वर्ष का संदेश यही है कि आपने जो ब्रह्मज्ञान की बातें सुनी हैं, ईश्वरीय अनुभव में सफल होने की जो युक्तियाँ सुनी हैं उन युक्तियों को, उन बातों को दुहराते हुए बाद में ही बिस्तर का त्याग करेंगे।

दूसरी बात, अपने में जो कमियाँ हैं उन्हें जितना हम जानते हैं उतना और कोई नहीं जानता। हमारी कमियाँ न पड़ोसी जानता है, न कुटुंबी जानता है, न पति जानता है, न पत्नी ही जानती है। अतः अपनी कमियाँ स्वयं ही निकाली जा सकती हैं। जैसे, पैर में काँटे चुभने पर एक-एक करके उन्हें निकाला जाता है वैसे ही अपनी गलतियों को चुन-चुनकर निकालना चाहिए। ज्यों-ज्यों आपकी कमियाँ निकलती जायेंगी, त्यों-त्यों आत्मानुभव, आत्म-सामर्थ्य का निखार आता जायेगा।

तीसरी बात, भूतकाल को भूल जाओ। सोचते हैं : 'हम छोटे थे तो ऐसे थे, वैसे थे...' तुम ऐसे-वैसे नहीं थे, भैया ! तुम्हारे शरीर और चित्त ऐसे-वैसे थे। तुम तो सदा से एकरस हो। तुम तो वह हो जैसा नानकजी कहते हैं :

आद सत जुगात् सत है भी सत नानक होसे भी सत।

चौथी बात, भविष्य की कल्पना मत करो। 'हम मरने के बाद स्वर्ग में जायेंगे या बिस्त में जायेंगे।' इस भ्रांति को निकाल दो। वरन् जीते-जी ही वह अनुभव पा लो जिसके आगे स्वर्ग का सुख तो क्या, इंद्र का वैभव भी तुच्छ भासता है।

संत-महापुरुषों की युक्तियों को अपनाकर ऐसे बन जाओ कि तुम जहाँ कदम रखो वहाँ प्रकाश हो जाय। तुम जहाँ जाओ वहाँ का वातावरण रसमय, ज्ञानमय हो जाय। फिर वर्ष में केवल एक ही दिन दिवाली होगी ऐसी बात नहीं, तुम्हारा हर दिन दिवाली हो जायेगा... हर सुबह नूतनता की खबरें देगी...

पुराण में दीपोत्सव

कार्तिक मास में दीप-दान का विशेष महत्त्व है। दीपावली में इसका माहात्म्य विशद रूप में उजागर होता है। 'श्रीपुष्करपुराण' में आता है :

तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते।
आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति।
महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदम्॥

'जो मनुष्य कार्तिक मास में संध्या के समय भगवान श्रीहरि के नाम से तिल के तेल का दीप जलाता है वह अतुल लक्ष्मी, रूप, सौभाग्य एवं सम्पत्ति को प्राप्त करता है।'

नारदजी के अनुसार दीपावली के उत्सव को कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या एवं शुक्ल पक्ष प्रतिपदा-इन पाँच दिनों तक मनाना चाहिए। इनमें भी प्रत्येक दिन अलग-अलग प्रकार की पूजा का विधान है।

इस द्वादशी को गोवत्सद्वादशी कहते हैं। इस दिन दूध देनेवाली गाय को उसके बछड़े सहित स्नान कराकर वस्त्र ओढ़ाना चाहिए, गले में पुष्पमाला पहनाना, सींग मँढ़ाना, चन्दन का तिलक करना तथा ताँबे के पात्र में सुगंध, अक्षत, पुष्प, तिल एवं जल का मिश्रण बनाकर निम्न मंत्र से गौ के चरणों का प्रक्षालन करना चाहिए :

क्षीरोदार्णवसम्भूते सुरासुरनमस्कृते।
सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमो नमः॥

'समुद्र-मंथन के समय क्षीरसागर से उत्पन्न, देवताओं तथा दानवों द्वारा नमस्कृत, सर्वदेवस्वरूपिणी माता ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। मेरे द्वारा दिये हुए इस अर्घ्य को स्वीकार करो।'

पूजा के बाद गौ को उड़द के बड़े खिलाकर यह प्रार्थना करनी चाहिए :

सुरभि त्वं जगन्मातर्देवी विष्णुपदे स्थिता।
सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस॥
ततः सर्वमये देवि सर्वदेवैरलङ्कृते।
मातर्ममाभिलाषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥

'हे जगदम्बे ! हे स्वर्गनिवासिनी देवी ! हे सर्वदेवमयी ! मेरे द्वारा अर्पित इस ग्रास का भक्षण करो। हे समस्त देवताओं द्वारा अलंकृत माता ! नन्दिनी ! मेरा मनोरथ पूर्ण करो।'

इसके बाद रात्रि में इष्ट, ब्राह्मण, गौ एवं अपने घर के वृद्धजनों की आरती उतारनी चाहिए।

दूसरे दिन कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धनतेरस कहते हैं। भगवान धन्वंतरि ने दुःखीजनों के रोगनिवारणार्थ इसी दिन आयुर्वेद का प्रागट्य किया था। इस दिन संध्या के समय घर से बाहर हाथ में जलता हुआ दीप लेकर भगवान यमराज की प्रसन्नता हेतु उन्हें इस मंत्र के साथ दीपदान करना

चाहिए ।

मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह ।
त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम ॥

'त्रयोदशी के इस दीपदान से पाश और दण्डधारी मृत्यु तथा काल के अधिष्ठाता देव भगवान यम, देवी श्यामा सहित मुझ पर प्रसन्न हों ।'

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी कहा जाता है । इस दिन चतुर्मुखी दीप का दान करने से नरक-भय से मुक्ति मिलती है । एक चार मुख (चार लौ) वाला दीप जलाकर इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए ।

दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया ।
चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये ॥

'आज चतुर्दशी के दिन नरक के अभिमानी देवता की प्रसन्नता के लिए तथा समस्त पापों के विनाश के लिए मैं चार बत्तियोंवाला चौमुखा दीप अर्पित करता हूँ ।'

अगले दिन कार्तिक अमावस्या को दीपावली का त्यौहार मनाया जाता है । इस दिन प्रातः उठकर स्नानादि करके जप-तप करने से अन्य दिनों की अपेक्षा विशेष लाभ होता है । इस दिन पहले से ही स्वच्छ किये गृह को सजाना चाहिए तथा भगवान नारायणसहित भगवती लक्ष्मी की मूर्ति अथवा चित्र की स्थापना करनी चाहिए । तत्पश्चात् धूप-दीप एवं स्वस्तिवाचन आदि वैदिक मंत्रों के साथ (अथवा भक्तिभाव से आरती के द्वारा) उनकी पूजा-अर्चना करनी चाहिए । इस रात्रि को भगवती लक्ष्मी भक्तों के घर पधारतीं हैं ।

पाँचवें दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को अन्नकूट दिवस कहते हैं । इस दिन गौओं को सजाकर, उनकी पूजा करके उन्हें भक्ष्य आदि अर्पित करते हुए यह मंत्र कहना चाहिए :

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु ॥

'धेनुरूप में स्थित जो लोकपालों की साक्षात् लक्ष्मी है तथा जो यज्ञ के लिए घी देती है, वह गौमाता मेरे पापों का नाश करे ।'

रात्रि को गरीबों को यथासम्भव अन्नदान करना चाहिए । इस प्रकार पाँच दिन का यह दीपोत्सव सम्पन्न होता है ।

भक्तशिरोमणि
गोस्वामी तुलसीदासजी

[गतांक से आगे]

भुलई नाम का एक कलवार था । वह भक्ति-पथ और गोस्वामीजी की निन्दा किया करता था । उसकी मृत्यु हो गयी । सब लोग उसे अर्थी पर सुलाकर श्मशान ले गये । उसकी स्त्री रोती हुई आयी, उसने गोस्वामीजी को प्रणाम किया । गोस्वामीजी के मुँह से सहज में निकल गया : ''सौभाग्यवती होओ !'' जब उसनें अपने पति की दशा बतलायी, तब तुलसीदासजी ने उसके शव को अपने पास मँगवा लिया और मुँह में चरणामृत देकर उसे जीवित कर दिया । उसी दिन से गोस्वामीजी ने नियम ले लिया और बाहर बैठना छोड़ दिया ।

तीन बालक बड़े ही पुण्यात्मा थे । वे प्रतिदिन गोस्वामीजी के दर्शन के लिए आते । गोस्वामीजी उनका प्रेम पहचानते थे । वे केवल उन्हें ही दर्शन देने के लिए बाहर निकलते और फिर अन्दर बैठ जाते । जिन्हें दर्शन नहीं मिलता, वे इस बात से अप्रसन्न थे । निगुरे, मनमुख, हल्की मति-गति वाले 'बाबा पक्षपाती हैं' ऐसा दोषदर्शन करने लगे । एक दिन गोस्वामीजी ने उनका महत्त्व सब लोगों के समक्ष प्रकट किया । उनके आने पर भी वे बाहर नहीं निकले । गोस्वामीजी का दर्शन न मिलने पर उन तीनों ने अपने शरीर त्याग दिये । गोस्वामीजी बाहर निकले और सबके सामने भगवान का चरणामृत पिलाकर उन्हें जीवनदान दिया ।

संवत् १६६९ वैशाख शुक्ल में टोडरमलजी

का देहान्त हुआ । उसके पाँच महीने बाद उनकी धन-सम्पत्ति उनके दोनों लड़कों को गोस्वामीजी ने बाँट दी । इसके बाद छोटी-मोटी और कई रचनाएँ कीं । बाहु-पीड़ा होने पर गोस्वामीजी ने हनुमान-बाहुक का निर्माण किया । पहले के ग्रन्थों को दुहराया, दूसरों से लिखवाया । संवत् १६७० बीतने पर जहाँगीर आया, वह बहुत-सी जमीन और धन देना चाहता था, परन्तु गोस्वामीजी ने नहीं लिया । एक दिन बीरबल की चर्चा हुई, उनकी बुद्धि और वाक्पटुता की प्रशंसा की गयी । गोस्वामीजी ने कहा : ''खेद है कि इतनी बुद्धि पाकर भी उन्होंने भगवान का भजन नहीं किया ।''

एक दिन अयोध्या का भंगी आया । गोस्वामीजी ने भगवान का स्वरूप समझकर अपने हृदय से लगा लिया । गिरनार के बहुत-से सिद्ध आकाश-मार्ग से आये । तुलसीदासजी का दर्शन करके बड़े आनन्दित हुए । उन्होंने बड़े प्रेम से पूछा : ''तुम कलियुग में रहते हो फिर भी काम से प्रभावित नहीं होते, इसका क्या कारण है ? यह योग की शक्ति है अथवा भक्ति का बल है ?'' गोस्वामीजी ने कहा : **''मुझमें न भक्ति का बल है, न ज्ञान का बल है, न योग का बल है । मुझे तो केवल भगवान के नाम का भरोसा है ।''** गोस्वामीजी का उत्तर सुनकर वे सिद्ध बहुत प्रसन्न हुए । उनसे आज्ञा लेकर गिरनार चले गये ।

गोस्वामीजी के पास चन्द्रमणि नाम का एक भाट आया । उसने उनके चरणों में गिरकर प्रार्थना की : ''मेरी आधी उमर विषयों के भोग में ही बीत गयी । अब जो बची है, वह भी वैसे ही न बीत जाय । इन्द्रियों के कारण मेरी बड़ी हँसी हुई । मेरे मन में काम-क्रोधादि बड़े-बड़े खल रहते हैं । कहीं अब भी वे न रह जायें । गोस्वामीजी महाराज ! अब मुझे भगवान के चरणों में ही रखिये ! काशी से दूर मत कीजिये ।'' गोस्वामीजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । लेख पर मेख मारनेवाले इस महापुरुष ने बड़ी प्रसन्नता से कहा : ''तुम हमेशा यहीं रहो और भगवान का गुणगान करो !''

गोस्वामीजी के पास चन्द नाम का एक हत्यारा ब्राह्मण आया । दूर खड़ा होकर वह राम-राम कहने लगा । अपने इष्टदेव का नाम सुनकर तुलसीदासजी आनन्द-मग्न हो गये और उसके पास जाकर उसे हृदय से लगा लिया । आदर से भोजन कराया और बड़ी प्रसन्नता से कहा :

तुलसी जाके मुखनि ते, धोखेहु निकसत राम ।
ताके पगकी पगतरी, मेरे तन को चाम ॥

यह बात शीघ्र ही सारे नगर में फैल गयी । सन्ध्या होते-होते बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी, विद्वान इकट्ठे हो गये । उन लोगों ने गोस्वामीजी से पूछा : ''यह हत्यारा कैसे शुद्ध हो गया ?'' गोस्वामीजी ने कहा : ''वेदों, पुराणों में नाम-महिमा लिखी है उसे पढ़कर देख लीजिये ।'' उन लोगों ने कहा : ''लिखा तो है, परन्तु हमें विश्वास नहीं होता । आप कोई ऐसा उपाय करें जिससे हमें विश्वास हो जाय ।'' गोस्वामीजी ने उस हत्यारे के हाथों से भगवान शिव के नन्दी को भोजन कराया, यह देखकर सबको विश्वास हो गया । चारों ओर जय-जय की ध्वनि होने लगी । निन्दकों ने गोस्वामीजी के चरणों में पड़कर क्षमा माँगी ।

वह ब्राह्मण दिनभर गोस्वामीजी के स्थान पर बैठकर लोभवश राम-राम रटता । सन्ध्या के समय श्रीहनुमानजी उसे धन दे देते थे । उसने भगवान श्रीराम के दर्शन के लिए बड़ा हठ किया । गोस्वामीजी ने कहा : ''पेड़ पर चढ़कर त्रिशूल पर कूद पड़ो, भगवान के दर्शन हो जायेंगे ।'' वह त्रिशूल गाड़कर वृक्ष पर चढ़ा परन्तु कूदने की हिम्मत नहीं हुई, नीचे उतर आया । एक घुड़सवार उधर से जा रहा था, उसने सब बातें पूछ लीं और पेड़ पर चढ़कर त्रिशूल पर कूद पड़ा । उसे भगवान के दर्शन हो गये । हनुमानजी ने उसे तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया ।

अब गोस्वामीजी का अंतिम समय आ गया था । उन्होंने लोगों से कहा : ''श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र का

वर्णन करके अब मैं मौन होना चाहता हूँ। आप लोग तुलसीदास के मुख में अब तुलसी डालें।'' संवत् १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया, शनिवार को गंगा के तट पर काशी में अस्सी घाट पर गोस्वामीजी ने राम-राम कहते हुए अपने शरीर का परित्याग किया।

इस प्रकार श्रीहनुमानजी की प्रेरणा और आज्ञा से तुलसीदासजी के रूप में पुनर्जन्म लेकर महर्षि वाल्मीकि ने भगवान राम के पवित्र चरित्र का लोगों में विस्तार किया। जिसके श्रवण से, कीर्तन से, स्मरण से लोगों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है और सबसे बढ़कर भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है।

गोस्वामीजी अमर हैं, वे अब भी 'श्रीरामचरितमानस' के रूप में लोगों के बीच विद्यमान हैं। अनन्त काल तक वे भक्तों-सज्जनों के बीच ही रहकर भक्तों-सज्जनों का कल्याण करेंगे। भक्त भगवान से पृथक नहीं होते। भक्त ही भगवान के मूर्तस्वरूप हैं, वे कृपा करके हमारे हृदय को शुद्ध करें और भगवान के चरणों में निष्कपट प्रेम दें।

यह संक्षिप्त जीवनी गोसाईंजी के समकालीन श्रीबेनीमाधवदासजी द्वारा रचित 'मूल गोसाईं-चरित' नामक पोथी के आधार पर लिखी गयी है।

[समाप्त]

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥

'जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।' *(गीता: ५. २५)*

सब पाप नष्ट हुए बिना ब्रह्मनिष्ठा होती नहीं। जिनके सब पाप नष्ट हुए हैं उनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो जाते हैं। वे सम्पूर्ण प्राणियों के अर्थात् देव, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, पशु-पक्षी जो भी उनके संपर्क में आतेहैंउनकेहितमेंरतहोतेहैं। जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

(आश्रम की 'निश्चिन्त जीवन' पुस्तक से)

भगवान बुद्ध की करुणा

(हिमालय के एकांत के बाद पूज्यश्री का हरिद्वार आगमन हुआ। हर की पौड़ी से सटे पंतद्वीप में मानो कुंभ का मेला-सा लगा था। गंगा का पावन तट... हरिद्वार-सी तीर्थस्थली... और पूज्यश्री का सत्संगामृत... मानो त्रिवेणी संगम... पूज्यश्री ने संतों की महिमा पर प्रकाश डालते हुए कहा :)

संत-महापुरुषों के द्वारा अनजाने में भी किसीका अकल्याण नहीं होता है। इसीलिए नानकजी ने कहा है :

ब्रह्मज्ञानी ते कछु बुरा न भया।

ब्रह्म-परमात्मा को प्राप्त महापुरुष कब, कहाँ और किस युक्ति से मानव का कल्याण कर दें, उसे परम कल्याण के मार्ग पर लगा दें, कहना कठिन है।

भगवान को पाये हुए ऐसे संत-महापुरुष स्वयं भगवत्स्वरूप हो जाते हैं। इसलिए उनके नाम के आगे श्रद्धा-भाव से भगवान शब्द जोड़ दिया जाता है। भगवान वशिष्ठ, भगवान बुद्ध... आदि।

भगवान बुद्ध के जीवन-काल का एक प्रसंग है :

भगवान बुद्ध भिक्षा के लिए निकले तब एक माई ने उनको आमंत्रित किया : ''आइये, महाराज!''

बुद्ध के आने पर उसने अपने रूप-लावण्य, लटके-झटके से बुद्ध को आकर्षित करना चाहा और कहा : ''भिक्षा में मैं आपको क्या दूँ? मैं अपने-आपको ही समर्पित करना चाहती हूँ। आप मेरे स्वामी और मैं आपकी दासी हूँ।''

बुद्ध : ''तेरी सब बातें मुझे स्वीकार हैं लेकिन अभी समय नहीं है। अभी मुझे जरा जल्दी है। यह सुंदर-सुहावना फल है। इसको सँभालकर रख। मैं आऊँगा,

यह वचन देता हूँ। लेकिन तुम इस फल को सँभालकर रखना।''

कुछ सप्ताह के बाद बुद्ध आये और बोले : ''मैंने वचन दिया था, मैं आ गया। पहले मेरा वह प्यारा खूबसूरत फल लाओ।''

महिला : ''महाराज ! हद हो गयी ! वह पका हुआ सुंदर, प्यारा फल दूसरे-तीसरे दिन बासी हो गया और जैसे बुढ़ापे में शरीर पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं वैसी ही दशा उस फल की हो गयी। चौथे-पाँचवे दिन फल बदबू मारने लगा। फिर भी एक सप्ताह तक मैंने सँभाला। आखिर फैंके बिना कोई चारा न था, अतः मैंने फैंक दिया।''

बुद्ध : ''इतना तुम समझ गयी ! इतना सुन्दर फल भी समय की धारा में बासी होकर सड़ गया। ऐसे ही शरीर का सौन्दर्य भी उस सुन्दर फल जैसा नहीं है क्या ? ऐसा ही तो तुम्हारा-मेरा पंचभौतिक शरीर है। इन शरीरों से भोग-भोगकर एक-दूसरे का विनाश करना, क्या यही जीवन है या जीवन कुछ और है ?''

बुद्ध की वाणी सुनकर उस महिला का हृदय परिवर्तित हो गया। वह भन्ते के चरणों में गिर पड़ी एवं जीवन का सही मार्ग बताने के लिए प्रार्थना करने लगी।

बुद्ध के सत्संग से उसकी मलीन भावना बदल गयी, मानसिक मलीनता नष्ट हो गयी, शारीरिक दोष भी नष्ट हो गये और वह एक श्रेष्ठ साध्वी बन गयी !

हे भारत की नारियों ! हे भारत के नवयुवकों ! तुम भी अपने जीवन को संयमी, ओजस्वी-तेजस्वी बनाने का यत्न करो। महापुरुषों के सान्निध्य से, सत्संग से, उनके सत्शास्त्रों से 'युवाधन सुरक्षा' की युक्तियाँ जान लो एवं अपने जीवन को भी संयमी, ओजस्वी-तेजस्वी बनाओ। आपका जीवन भी धन्य हो जायेगा और भारत की नींव भी सुदृढ़ हो जायेगी।

आज पाश्चात्य अंधानुकरण, भोग-विलास और वैमनस्य के प्रभाव से हमारे देश की युवा पीढ़ी कमजोर होती जा रही है, उसकी नींव खोखली होती जा रही है... सावधान ! षड्यंत्रकारियों का जाल विफल कर दो, जागो, स्वयं भी चेतो, औरों को भी चेताओ। भारत का भविष्य सुदृढ़ एवं मजबूत करो और यह तुम कर सकते हो...

*

एकादशी माहात्म्य

[प्रबोधिनी एकादशी : २६ नवम्बर २००१

श्रीकृष्ण भगवान ने कहा : ''हे अर्जुन ! तुम्हें मुक्ति देनेवाली प्रबोधिनी एकादशी के संब में नारद और ब्रह्माजी के बीच हुए वार्त्तालाप क सुनाता हूँ। एक बार नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा

'हे पिता ! प्रबोधिनी एकादशी के व्रत का क्य फल होता है, आप कृपा करके मुझे यह स विस्तारपूर्वक बताएँ।'

ब्रह्माजी बोले : 'हे पुत्र ! जिस वस्तु क त्रिलोक में मिलना दुष्कर है, वह वस्तु भी कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रबोधिनी एकादशी के व्रत से मिल जाती है। इस व्रत के प्रभाव से पूर्व जन्म के किये हुए अनेक बुरे कर्म क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। हे पुत्र ! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस दिन थोड़ा भी पुण्य करते हैं, उनका वह पुण्य पर्वत के समान अटल हो जाता है। उनके पितृ विष्णुलोक में जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि महान पाप भी प्रबोधिनी एकादशी के दिन रात्रि को जागरण करने से नष्ट हो जाते हैं।

हे नारद ! मनुष्य को भगवान की प्रसन्नता के लिए कार्तिक मास की प्रबोधिनी एकादशी का व्रत अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य इस एकादशी व्रत को करता है, वह धनवान, योगी, तपस्वी तथा इन्द्रियों को जीतनेवाला होता है, क्योंकि एकादशी भगवान विष्णु की अत्यंत प्रिय है।

इस एकादशी के दिन जो मनुष्य भगवान की प्राप्ति के लिए दान, तप, होम, यज्ञ (भगवन्नामजप

भी परम यज्ञ है। 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि। यज्ञों में जपयज्ञ मेरा ही स्वरूप है।' - श्रीमद्भगवद्गीता) आदि करते हैं, उन्हें अक्षय पुण्य मिलता है।

इसलिए हे नारद ! तुमको भी विधिपूर्वक विष्णु भगवान की पूजा करनी चाहिए।

ब्रह्माजी बोले : ''हे नारद ! इस एकादशी के दिन मनुष्य को ब्रह्ममुहूर्त में उठकर व्रत का संकल्प लेना चाहिए और पूजा करनी चाहिए। उस रात्रि को भगवान के समीप गीत, नृत्य, कथा-कीर्तन करते हुए रात्रि व्यतीत्र करनी चाहिए।

प्रबोधिनी एकादशी के दिन पुष्प, अगर, धूप आदि से भगवान की आराधना करनी चाहिए, भगवान को अर्घ्य देना चाहिए। इसका फल तीर्थ और दान आदि से करोड़ गुना अधिक होता है।

जो भगवान की गुलाब के पुष्प से, बकुल और अशोक के फूलों से, सफेद और लाल कनेर के फूलों से, दूर्वादल से, शमीपत्र से, चम्पकपुष्प से भगवान विष्णु की पूजा करते हैं, वे आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं। इस प्रकार रात्रि में भगवान की पूजा करके प्रातःकाल स्नान के पश्चात् भगवान की प्रार्थना करते हुए गुरु की पूजा करनी चाहिए और सदाचारी व पवित्र ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर अपने व्रत को छोड़ना चाहिए।

जो मनुष्य चातुर्मास्य व्रत में किसी वस्तु को त्याग देते हैं, उन्हें इस दिन से पुनः ग्रहण करनी चाहिए। जो मनुष्य प्रबोधिनी एकादशी के दिन विधिपूर्वक व्रत करते हैं, उन्हें अनन्त सुख मिलता है और अंत में स्वर्ग को जाते हैं।''

[*'पद्मपुराण' से*]

लक्ष्य जितना ऊँचा होता है संकल्प उतने ही शुद्ध होते हैं। ऊँचा लक्ष्य है मोक्ष, ऊँचा लक्ष्य है परमात्म-प्राप्ति, ऊँचा लक्ष्य है, अनन्त ब्रह्माण्डनायक ईश्वर से मिलना। ऊँचा लक्ष्य तुच्छ संकल्पों को दूर कर देता है। ऊँचा संकल्प जितना दृढ़ होगा उतना ही तुच्छ संकल्पों को हटाने में सफलता मिलेगी।

(आश्रम की 'निश्चिन्त जीवन' पुस्तक से)

गुफा में साँप !

सिंध (वर्तमान पाकिस्तान) के तलहार शहर की बात है :

मैं (स्वामी केवलराम) और संत कृष्णदास दोनों साथ में ही रहते थे और गुरुद्वार पर अध्ययन करते थे। एक बार हम दोनों टंडेमहमदखान से सद्गुरु स्वामी श्री केशवानंदजी की आज्ञा लेकर स्वामी श्री लीलाशाहजी के दर्शन के लिए तलहार गये।

हम सब गुरुभाई एक ही सद्गुरु के श्रीचरणों में पढ़ते थे परंतु साधना की अवस्था में तो हम सब केवल विद्यार्थी ही थे। जबकि श्री लीलाशाहजी वेदांत का अभ्यास पूर्ण कर चुके थे। श्री लीलाशाहजी योगाभ्यास सीखते-सीखते दूसरे विद्यार्थियों एवं भक्तों को योगासन एवं योगक्रियाएँ सिखाते थे।

स्वामी श्री लीलाशाहजी तलहार शहर से दूर एक बगीचे में बनी कुटिया में रहते थे। तलहार पहुँचते-पहुँचते हमें रात हो गयी। हम उनके निवास-स्थान पर पहुँचे तो द्वार खुला हुआ था। मानो, उन्हें पहले से ही हमारे आने का पता लग गया था!

हम कुटिया में गये तो भीतर कोई भी न था। तभी 'हरि ॐ... हरि ॐ... प्रभु ! विराजो।' की ध्वनि सुनायी दी। लालटेन जल रही थी। हम दोनों बैठ गये। थोड़ी ही देर में श्री लीलाशाहजी गुफा से बाहर आये और हमसे बड़े प्रेम से मिले। फिर पूछा :

''आप लोग यहाँ आने के लिए सुबह की ट्रेन

में निकले होंगे, अतः भूखे होंगे ?''

इतना कहकर थोड़ी-ही देर में भोजन की दो थालियाँ लाकर हमारे सामने रखते हुए वे बोले : ''पहले भोजन कर लो, फिर शांति से बातें करेंगे।''

हमें भी जमकर भूख लगी थी लेकिन आश्चर्य तो इस बात का हुआ कि बिना पूर्व सूचना के इतनी देर रात में इस जंगल में यह भोजन कहाँ से आया ? हम तो विस्मय में पड़ गये !

स्वामीजी ने कहा : ''प्यारे ! जल्दी भोजन करके थालियाँ बाहर टंकी पर रख देना, मैं ले जाऊँगा।''

''मैं ले जाऊँगा'' यह सुनकर हमें और आश्चर्य हुआ। मैं कृष्णदास के सामने देखूँ और कृष्णदास मेरे सामने। हमें आश्चर्यचकित देखकर श्री लीलाशाहजी हँसते-हँसते बोले :

''आप लोगों को क्या हो गया है ? भोजन क्यों नहीं कर रहे हो ?''

हमने कहा : ''स्वामीजी ! आप साक्षात् श्रीकृष्ण जैसी लीला कर रहे हैं। आप भी हमारे साथ भोजन कीजिये।''

किंतु स्वामीजी ने भोजन लेने से मना कर दिया क्योंकि वे उन दिनों केवल फलाहार ही करते थे, भोजन नहीं लेते थे एवं योग-साधना में रत रहते थे।

हमने भोजन किया एवं थाली साफ करके बाहर रख आये। उसके पश्चात् स्वामीजी ने सब समाचार पूछे। थोड़ी देर सत्संग की बातें हुईं। फिर स्वामीजी ने कहा : ''अब आपको आराम करना होगा ?''

मैंने कहा : ''हाँ, जैसी आपकी आज्ञा लेकिन आराम करने से पूर्व मैं आपकी गुफा के दर्शन करना चाहता हूँ।''

स्वामीजी ने अनुमति देते हुए कहा : ''हाँ, भले जाओ लेकिन सँभलकर उतरना, सीढ़ियाँ थोड़ी ऊँची हैं। डरना मत।''

मैंने कहा : ''स्वामीजी ! इसमें डरने की क्या बात है ?''

ऐसा कहकर मैं गुफा की ओर आगे बढ़ा। अंदर दीपक जल रहा था। मुश्किल से मैं दो ही सी[illegible] उतरा होऊँगा, इतने में अंदर का दृश्य देखकर [illegible] डरकर पीछे हट गया... एक भयंकर विषधर फ[illegible] निकालकर बैठा था ! मैं जल्दी से ऊपर आक[illegible] स्वामीजी के पास बैठ गया।

स्वामीजी ने पूछा : ''जल्दी वापस क्यों [illegible] गये ? गुफा में अंदर गये कि नहीं ?''

हाथ जोड़ते हुए मैंने कहा : ''स्वामीजी आपकी लीला अपरंपार है। आप असीम शक्ति [illegible] भंडार हैं। साँप अंदर बैठा हो तो मैं कैसे अंदर [illegible] सकता हूँ ?''

स्वामीजी ने हँसकर कहा : ''भाई ! अंदर साँ[illegible] नहीं है, आपको भ्रांति हो गयी है। चलो, मैं आप[illegible] साथ आता हूँ।''

फिर हम तीनों गये। संत कृष्णदास [illegible] स्वामीजी ने कहा : ''अंदर जाकर देखो तो साँ[illegible] दिखता है, क्या ?''

संत कृष्णदास ने सीढ़ियों से उतरकर अंद[illegible] देखा और कहा : ''स्वामीजी ! साँप तो नहीं है।''

यह कहकर वे बाहर निकल आये [illegible] फिर स्वामीजी ने मुझसे कहा : ''अब आप जाक[illegible] देखो।''

मैं नीचे उतरा, ध्यान से देखा तो साँप फन निकालकर बैठा है ! मैं फिर से पीछे हट गया। फिर स्वामीजी हँसते-हँसते मुझे अपने साथ ले गये, उस वक्त साँप न दिखा !

पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज अनंत-अनंत यौगिक शक्तियों के धनी थे। अगर कोई अधिकारी होता और उसमें उसका हित समाया होता तो कभी-कभार वे अपने उस अथाह योग-सामर्थ्य के एकाध अंश की झलक दिखा देते थे। यह भी उनकी मौज थी। अन्यथा संतों को किसी भी लीला में न तो आसक्ति होती है न ही लोकैषणा की भावना !

- स्वामी केवलराम, अजमेर

(पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू के गुरुभाई)

जिसमें प्रेम होता है, उसका चिन्तन स्वतः होता है इसलिए भगवद्प्रेम बढ़ाओ। *- पूज्यश्री*

भक्त मोहन

(अमदावाद में मार्च २००१ में आयोजित विद्यार्थी शिविर में देश के नन्हें-नन्हें भावी कर्णधारों को प्रेरक प्रसंग के माध्यम से भक्ति की महिमा समझाते हुए पूज्यश्री ने कहा :)

मोहन की माँ ने उसे पढ़ने के लिए गुरुकुल में भेजा। मोहन के पिता का बचपन में ही स्वर्गवास हो गया था। गरीब ब्राह्मणी ने अपने इकलौते बेटे को गाँव से ५ मील दूर गुरुकुल में प्रवेश करवाया। गुरुकुल जाते समय बीच में जंगल का रास्ता पड़ता था।

एक दिन घर लौटने में मोहन को देर हो गयी। भयानक जानवरों की आवाजें आने लगीं। कहीं चीता, कहीं शेर तो कहीं सियार... मोहन थर-थर काँपने लगा। मोहन जैसे-तैसे करके जंगल से बाहर निकला। उसकी माँ राह देख रही थी। माँ ने कहा :

''बेटा ! क्यों डरता है ?''

मोहन : ''माँ ! अँधेरा हो गया था। हिंसक प्राणियों की भयानक आवाजें आ रही थीं। माँ ! इसलिए बड़ा डर लगता था। भगवान का नाम लेता-लेता मैं किसी तरह भाग आया।''

माँ : ''तू अपने भाई को बुला लेता।''

मोहन : ''माँ ! मेरा कोई भाई भी है क्या ?''

माँ : ''हाँ, हाँ, बेटा ! तेरा बड़ा भाई है।''

मोहन : ''कहाँ है ?''

माँ : ''जहाँ से बुलाओ, आ जाता है।''

मोहन : ''भाई का नाम क्या है ? माँ !''

माँ : ''बेटा ! तेरे भाई का नाम है गोपाल। कोई उसको गोपाल बोलता है, कोई गोविन्द, कोई कृष्ण बोलता है, कोई केशव। वही तेरा बड़ा भाई है, बेटा ! जब भी डर लगे तब तू 'गोपाल भैया... गोपाल भैया' करके उसको पुकारना तो वह आ जायेगा।''

दूसरे दिन गुरुकुल से लौटते समय जंगल में मोहन को डर लगा। उसने पुकारा :

''गोपाल भैया ! गोपाल भैया ! आ जाओ न, मुझे बड़ा डर लग रहा है... गोपाल भैया।''

इतने में मोहन को बड़ा ही मधुर स्वर सुनायी दिया : ''भैया ! तू डर मत। मैं यह आया।''

गोपाल भैया का हाथ पकड़कर मोहन निडर होकर चलने लगा। जंगल की सीमा तक मोहन को लौटाकर गोपाल लौटने लगा।

मोहन : ''गोपाल भैया ! घर चलो।''

गोपाल : ''नहीं, भैया ! मुझे और भी काम हैं।''

घर जाकर मोहन ने माँ को सारी बात बतायी : ''माँ ! माँ ! आज भी देर हो गयी। जंगल में डर लगने लगा तो मैंने गोपाल भैया को पुकारा। वे मुझे गाँव की सीमा तक छोड़ गये।''

माँ समझ गयी कि जो दयामय द्रौपदी और गजेन्द्र की पुकार पर दौड़ पड़े थे, मेरे भोले, निर्दोष और दृढ़ श्रद्धावाले बालक की पुकार पर भी वे ही आये थे।

अब मोहन वन में पहुँचते ही गोपाल भैया को पुकारता और वे झट आ जाते।

एक दिन गुरुकुल में गुरुजी के यहाँ सारे बच्चे और कुछ शिक्षक उपस्थित हुए। गुरुजी के यहाँ दूसरे दिन श्राद्ध था। कौन बच्चा इस निमित्त क्या लायेगा, इस पर बातचीत हो रही थी। किसीने कहा : ''मैं दूध लाऊँगा।''

किसीने कहा : ''मैं शक्कर लाऊँगा।''

किसीने कहा : ''चावल लाऊँगा।''

किसीने कहा : ''चारोली और इलायची लाऊँगा।''

मोहन गरीब था फिर भी उसने कहा : ''गुरुजी ! गुरुजी ! मैं दूध लाऊँगा। अपनी माँ से जाकर कहूँगा तो मेरी माँ दूध का खूब बड़ा लोटा भर देगी, मैं ले आऊँगा।''

गुरुजी को पता था कि ''यह गरीब है क्या लायेगा ?''

मोहन ने घर जाकर गुरुजी के यहाँ श्राद्ध की बात कही और कहा : ''माँ ! मुझे भी एक लोटा दूध ले जाना है।''

गरीब माँ कहाँ से दूध लाती ? माँ ने कहा : ''बेटा ! जब गुरुकुल जायेगा न तो गोपाल भैया को पुकारना। तू गोपाल भैया से दूध माँग लेना, वे ले आयेंगे।''

दूसरे दिन मोहन ने जंगल में जाते ही गोपाल भैया को पुकारा और कहा : ''आज मेरे गुरुजी के पिता का श्राद्ध है। मुझे एक लोटा दूध ले जाना है। माँ ने कहा है कि गोपाल भैया से माँग लेना।''

गोपाल ने मोहन के हाथ में लोटा देते हुए कहा : ''अपने गुरुजी को दूध दे देना।''

मोहन लोटा लेकर गुरुकुल पहुँचा। कोई ढेर सारे चावल लाया, तो कोई शक्कर और यह तो केवल एक लोटा दूध लाया !

मोहन : ''गुरुजी ! गुरुजी ! गोपाल भैया ने दूध भेजा है।''

गुरुजी व्यस्त थे, सामने तक न देखा। उन्हें पता था कि गरीब मोहन क्या लाया होगा।

मोहन ने फिर से कहा : ''गुरुजी ! गुरुजी ! मैं दूध लाया हूँ, गोपाल भैया ने दिया है।''

गुरुजी : ''बैठ, अभी।''

थोड़ी देर बाद फिर मोहन बोला : ''गुरुजी ! दूध लाया हूँ। गोपाल भैया ने दिया।''

गुरुजी ने कहा : ''सेवक ! ले जा। जरा-सा दूध लाया है और सिर खपा दिया। जा, इसका लोटा खाली कर दे।''

सेवक लोटा ले गया। खाली बर्तन में दूध डाला। बर्तन भर गया। दूसरे बर्तन में डाला, दूसरा बर्तन भी भर गया। जितने बर्तनों में दूध डालता बर्तन भर जाते, पर लोटा खाली न होता ! सेवक चौंका। उसने जाकर गुरुजी को बताया।

गुरुजी : ''कहाँ से लाया है यह अक्षय पात्र ?''

मोहन : ''एक मेरा गोपाल भैया है उनसे माँगकर लाया हूँ।''

गुरुजी : ''तेरी आवाज सुनकर गोपाल कैसे आ गये ?''

मोहन : ''मेरी माँ ने बताया था कि 'कोई प्रेम से और विश्वास से उसको पुकारे, ध्यान तो वह प्रगट हो जाता है।' एक दिन घर जाने मे हो गयी थी। जंगल में शेर-चीतों की आवाज सुन मैं घबरा गया और उसको पुकारा तो वह आ ग आज मैंने गोपाल भैया से कहा कि 'दूध चाहि तो वह दूध ले आया।''

गुरुजी ने मोहन को प्रणाम किया और कह ''मोहन ! मुझे भी ले चल, अपने गोपाल भैया दर्शन करा।''

मोहन : ''चलिये, गुरुजी ! जब मैं घर जाऊँ तब जंगल के रास्ते में गोपाल भैया को बुलाऊँग आप भी देख लेना।''

श्राद्ध-विधि पूरी होने के बाद गुरुजी मोहन साथ चले। रास्ते में जंगल आया। मोहन ने आवा लगायी : ''गोपाल भैया ! गोपाल भैया ! आ जाओ न।''

मोहन को आवाज सुनायी दी : ''आज तुम अकेले तो हो नहीं, डर तो लगता नहीं, फिर मुझ क्यों बुलाते हो ?''

मोहन : ''गोपाल भैया ! डर तो नहीं लगता लेकिन मेरे गुरुजी तुम्हारे दर्शन करना चाहते हैं।''

गुरुजी : ''मेरे कर्म ऐसे हैं कि मुझे देखकर भगवान नहीं आते। तू दूर जाकर पुकार।''

मोहन ने दूर जाकर पुकारा। गोपाल भैया दिखे। मोहन ने कहा : ''मेरे गुरुजी को भी दर्शन दो न।''

गोपाल : ''वे मेरा तेज सहन नहीं कर सकेंगे। तेरी माँ तो बचपन से भक्त थी, तू भी बचपन से भक्ति करता है। तुम्हारे गुरुजी ने इतनी भक्ति नहीं की है। गुरुजी से कहो कि 'जो प्रकाश-पुंज दिखेगा, वही गोपाल भैया है।' जाओ, गुरुजी को मेरे प्रकाश का दर्शन हो जायेगा, उसीसे उनका कल्याण हो जायेगा।''

मोहन ने आकर कहा : ''देखो, गुरुजी ! गोपाल भैया खड़े हैं।''

गुरुजी : ''मेरे को गोपाल भैया नहीं दिखते,

केवल प्रकाश दिखता है।''

मोहन : ''हाँ, वही है, वही है गोपाल भैया !''

गुरुजी गद्गद हो गये, उनका रोम-रोम आनंदित हो उठा, अष्टसात्त्विक भाव प्रगट हो गये। गुरुजी : ''गोपाल ! गोपाल !'' करके पुकार उठे। अब तो गुरुजी मोहन को अपना गुरु मानने लगे क्योंकि उसीने भगवद्दर्शन का रास्ता बताया।

तुम भी मोहन की नाईं भगवन्नाम जपते जाओ। गोपाल भैया तुम पर भी प्रसन्न हो जायेंगे... स्वप्न में भी दर्शन दे देंगे। बच्चों पर तो वे जल्दी खुश होते हैं। तुम भी भगवान के साथ सेवक-स्वामी, सखा-भैया के भाव से कोई भी संबंध जोड़कर प्रेम से उन्हें पुकारोगे तो तुम्हारे हृदय में भी आनंद प्रगट हो जायेगा।

संतों ने पिला दी दवा मुझे

संतों ने पिला दी दवा मुझे, भ्रमजाल का रोग मिटा दिया।
मैंने डगर डगर में ढूँढ़ा प्रभु को, दिल में दीदार करा दिया॥
मंदिर मस्जिद गिरिजाघर में, तीरथ मक्का मथुरा काशी।
बाइबिल वेद कुरान पढ़े, कहीं मिला नहीं तू अविनाशी॥
तेरा रूप रंग आकार कहीं, मुझे नजर आज तक आया नहीं।
मेरी लगन लालसा मुरझायी, जब हार गया तेरा अभिलाषी॥
पुण्य पुराने अब जागे, संतों ने मुझे मिलवा दिया।
संतों ने पिला दी...

मेरे मन का मिटाया अँधेरा, एक दीप ज्ञान का जलवाकर।
छूट गये काम मद लोभ मोह, गुरुचरणों की छाया पाकर॥
क्रोध ईर्ष्या मनमानी, काफूर हो गये इस तन मन से।
करुणामय कृपा कृपालु की, पा गया संतचरण में आकर॥
निर्लेप जिंदगी संतोषी, देकर संतोष करा दिया।
संतों ने पिला दी...

तेरी चमक दमक तेरी खुशबू, संसार में गुलशन बन छाई।
करतार अनोखा तू जग का, छवि तेरी हर कण मुसकाई॥
उठ गयी नजर जिस ओर मेरी, जो देखूँ वह सब तू ही तू।
जल थल नभ जीव चराचर में, मैंने तेरी ममता पायी॥
तू मेरा बस तेरा ही मैं, यह रिश्ता पक्का करा दिया।
संतों ने पिला दी...

- जेठमल वर्मा, जयपुर।

''मिठाई की दुकान अर्थात् यमदूत का घर''

-स्वामी विवेकानंद

आयुर्वेद-शास्त्र में आता है कि केवल दूध ही पचने में भारी है तो फिर दूध को जलाकर जो मावा बनाया जाता है वह पचने में कितना भारी होगा ! आचार्य सुश्रुत ने कहा है : ''भैंस का दूध पचने में अतिभारी, अतिशय अभिष्यंदी होने से रसवाही स्रोतों को कफ से अवरुद्ध करनेवाला एवं जठराग्नि का नाश करनेवाला है !'' यदि भैंस का दूध इतना नुकसान कर सकता है तो उसका मावा जठराग्नि का कितना भयंकर नाश करता होगा ? मावे के लिये शास्त्र में 'किलाटक' शब्द का उपयोग किया गया है, जो भारी होने के कारण भूख मिटा देता है :

किरति विक्षिपत क्षुध गुरुत्वात् कृ विक्षेपे किरे लश्रति किलाटः इति हेमः ततः स्वार्थेकन्।

नई ब्यायी हुई गाय-भैंस के शुरुआत के दूध को 'पीयूष' भी कहते हैं। यही कच्चा दूध बिगड़कर गाढ़ा हो जाता है, जिसे 'क्षीरशाक' कहते हैं। दूध को दही अथवा छाछ से फाड़कर स्वच्छ वस्त्र में बाँधकर उसका पानी निकाल लिया जाता है उसे 'तक्रपिंड' (छेना) कहते हैं।

भावप्रकाश निघंटु में लिखा गया है कि 'ये सब चीजें पचने में अत्यंत भारी एवं कफकारक होने से अत्यंत तीव्र जठराग्निवालों को ही पुष्टि देती हैं, अन्य के लिये तो रोगकारक ही साबित होती हैं।'

श्रीखंड और पनीर भी पचने में अति भारी, कब्जियत करनेवाला एवं अभिष्यंदी है। यह चरबी,

कफ, पित्त एवं सूजन उत्पन्न करनेवाला है और यदि नहीं पचता है तो चक्कर, ज्वर, रक्तपित्त (रक्त का बहना), रक्तवात, त्वचारोग, पांडु (रक्त न बनना) तथा रक्त का कैंसर आदि रोगों को जन्म देता है।

उसमें भी मावा, पीयूष, छेना (तक्रपिंड), क्षीरशाक, दही वगैरह की मिठाई बनाने में शक्कर का उपयोग किया जाता है, तब तो वे और भी ज्यादा कफ करनेवाले और पचने में भारी हो जाते हैं एवं अभिष्यंदी स्रोतों को अत्यधिक अवरुद्ध करनेवाले बन जाते हैं। पाचन में अत्यंत भारी ऐसी मिठाइयाँ खाने से कब्जियात एवं मंदाग्नि होती है जो सब रोगों का मूल है। इसका योग्य उपचार न किया जाय तो ज्वर आता है एवं ज्वर को दबाया जाय अथवा गलत चिकित्सा हो जाय तो रक्तपित्त, रक्तवात, त्वचा के रोग, पांडु, रक्त का कैंसर, गाँठ, चक्कर आना, उच्च रक्तचाप, किडनी के रोग, लकवा, कोलेस्ट्रॉल बढ़ने से हृदयरोग, डायबिटिज़ आदि रोग होते हैं। कफ बढ़ने से खाँसी, दमा, टी.बी. जैसे रोग होते हैं। मंदाग्नि होने से सातवीं धातु वीर्य कैसे बन सकता है ? अतः, अंत में नपुंसकता आ जाती है !

आज का विज्ञान भी कहता है कि 'बौद्धिक कार्य करनेवाले व्यक्ति के लिये दिन के दौरान भोजन में केवल ४० से ५० ग्राम वसा (चर्बी) पर्याप्त है और कठिन श्रम करनेवालों के लिये ९० ग्राम। इतनी वसा तो सामान्य भोजन में लिये जानेवाले घी, तेल, मक्खन, गेहूँ, चावल, दूध आदि में से ही मिल जाती है। इसके अलावा मिठाई खाने से कोलेस्ट्रॉल बढ़ता है। धमनियों की जकड़न बढ़ती है, नाड़ियाँ मोटी होती जाती हैं। दूसरी ओर रक्त में चर्बी की मात्रा बढ़ती है और वह इन नाड़ियों में जाती है। जब तक नाड़ियों में कोमलता होती है तब तक वह फैलकर इस चरबी को जाने के लिये रास्ता देती है। परंतु जब वह कड़क हो जाती है, उसकी फैलने की सीमा पूरी हो जाती है तब वह चर्बी वहीं रुक जाती है और हृदयरोग को जन्म देती है।'

मिठाई में अनेक प्रकार की दूसरी ऐसी चीजें भी मिलायी जाती हैं, जो घृणा उत्पन्न करें। शक्कर अथवा बूरे में कॉस्टिक सोडा अथवा चॉक का चूर भी मिलाया जाता है जिसके सेवन से आँतों में छाले पड़ जाते हैं। प्रत्येक मिठाई में प्रायः कृत्रिम (एनेलिन) रंग मिलाये जाते हैं जिसके कारण कैंसर जैसे रोग उत्पन्न होते हैं।

जलेबी में कृत्रिम पीला रंग (मेटालीन यलो) मिलाया जाता है, जो हानिकारक है। लोग उसमें टॉफी, खराब मैदा अथवा घटिया किस्म का गुड़ भी मिलाते हैं। उसे आयस्टोन एवं पेराफील से ढाँका जाता है, वह भी हानिकारक है। उसी प्रकार मिठाइयों को मोहक दिखानेवाले चाँदी के वर्क एल्यूमिनियम फॉइल में से बने होते हैं एवं उसमें जो केसर डाली जाती है, वह तो केसर के बदले भुट्टे के रेशे, मुर्गी का खून भी हो सकता है !!

आधुनिक विदेशी मिठाइयों में पीपरमेंट, गोले, चॉकलेट, बिस्किट, लालीपॉप, केक, टॉफी, जेम्स, जेलीज़, ब्रेड वगैरह में घटिया किस्म का मैदा, सफेद खड़ी, प्लॉस्टर ऑफ पेरिस, बाजरी अथवा अन्य अनाज का बिगड़ा हुआ आटा मिलाया जाता है। अच्छे केक में भी अंडे का पाऊडर मिलाकर बनावटी मक्खन, घटिया किस्म के शक्कर एवं जहरीले सुगंधित पदार्थ मिलाये जाते हैं। नानखटाई में इमली के बीज के आटे का उपयोग होता है। 'कॉन्फेक्शनरी' में फ्रेंच चॉक, ग्लुकोज़ का बिगड़ा हुआ सीरप एवं सामान्य रंग अथवा एसेन्स मिलाये जाते हैं। बिस्किट बनाने के उपयोग में आनेवाले आकर्षक जहरी रंग हानिकारक होते हैं।

इस प्रकार, ऐसी मिठाइयाँ वस्तुतः मिठाई न होते हुए बल, बुद्धि, स्वास्थ्यनाशक, रोगकारक एवं तमस बढ़ानेवाली साबित होती हैं।

मिठाइयों का शौक कुप्रवृत्तियों का कारण एवं परिणाम है। डॉ. ब्लोच लिखते हैं कि 'मिठाई का शौक जल्दी कुप्रवृत्तियों की ओर प्रेरित करता है। जो बालक मिठाई के ज्यादा शौकीन होते हैं उनके पतन की ज्यादा संभावना रहती है और वे दूसरे बालकों की अपेक्षा हस्तमैथुन जैसे कुकर्मों की ओर

जल्दी खिंच जाते हैं ।'

स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है :

''मिठाई (कंदोई) की दुकान साक्षात् यमदूत का घर है ।''

जैसे, खमीर लाकर बनाये गये इडली-डोसे वगैरह खाने में तो सुंदर लगते हैं परंतु स्वास्थ्य के लिये खूब-खूब हानिकारक होते हैं, इसी प्रकार मावे एवं दूध को फाड़कर बने पनीर से बनायी गयी मिठाइयाँ लगती तो हैं मिठाइयाँ पर होती हैं जहर के समान । मिठाई खाने से लीवर और आँतों की भयंकर असाध्य बीमारियाँ होती हैं । अतः, ऐसी मिठाइयों से आप भी बचें औरों को भी बचायें ।

[*साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत ।*]

सदा स्मरण रहे कि इधर-उधर भटकती वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है । अत: वृत्तियों को बहकाओ नहीं । तमाम वृत्तियों को एकत्रित करके साधना-काल में आत्मचिन्तन में लगाओ और व्यवहार-काल में जो कार्य करते हो उसमें लगाओ । दत्तचित्त होकर हर कोई कार्य करो । सदा शान्त वृत्ति धारण करने का अभ्यास करो । विचारवन्त एवं प्रसन्न रहो । जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो । सबसे स्नेह रखो । दिल को व्यापक रखो । आत्मनिष्ठा में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग एवं सत्साहित्य से जीवन को भक्ति एवं वेदान्त से पुष्ट एवं पुलकित करो ।

(आश्रम की 'आत्मयोग' पुस्तक से)

आगामी सत्संग कार्यक्रम

(१) १ से ४ नवम्बर, किरोड़ीमल पार्क, भिवानी (हरियाणा) में पूज्य बापूजी द्वारा (प्रथम दो दिन श्रद्धेय श्री नारायण साँईं एवं श्री सुरेशानंदजी द्वारा) । फोन : (०१६६४) ४३३१०, ४१२०५, ४६७३२, ४८०४३.

(२) ८ से ११ नवम्बर, वाराणसी (उ.प्र.) में पूज्य बापूजी द्वारा (प्रथम दिन श्रद्धेय श्री नारायण साँईं द्वारा). फोन : (०५४२) २१३७८१, २२३६४१, २२३६४२.

पूरे गाँव की कायापलट !

मैं तिलहन संघ में सुपरवाइज़र हूँ । पूज्यश्री से दिनांक २७.६.९१ को दीक्षा लेने के बाद मैंने व्यसनमुक्ति के प्रचार-प्रसार का लक्ष्य बना लिया है ।

एक बार मैं सोयाबीन की खरीदी हेतु कौशलपुर, जिला शाजापुर पहुँचा । वहाँ के वसूली पटेल रामचरण मेवाड़ा से भेंट हुई तथा सोयाबीन भी प्राप्त हो गया । दोपहर के १२ बजे गाँववालों ने मुझसे चाय पीने के लिए निवेदन किया । मैंने मना करते हुए कहा : ''मैं चाय तो पीता नहीं हूँ । पूज्य बापू का साधक हूँ ।''

उस पटेल ने तुरंत कहा : ''हम लोग तो रोजाना ५० बोतल शराब पी जाते हैं, हर आठवें दिन बकरा मारकर खा जाते हैं एवं १५ दिन में लड़ाई-झगड़े करके समीप के थाने सलसलाई में रिपोर्ट लिखवाते हैं ।''

तब मैंने कहा : ''आप लोग मनुष्यजीवन का सही अर्थ ही नहीं समझते हैं । आप लोग एक बार पूज्य बापू के दर्शन कर लें तो आपको सही जीवन जीने की कुंजी मिल जायेगी ।''

गाँववालों ने मेरी बात मान ली और दस व्यक्ति मेरे गाँव ताजपुर आये । मेरी तबियत खराब होने की वजह से मैंने एक साधक को १०० रुपये देकर उनके साथ जन्माष्टमी महोत्सव में सूरत भेजा ।

पूज्य बापू की उन पर कृपा बरसी और सबको गुरुदीक्षा मिल गयी । जब वे लोग अपने गाँव पहुँचे तो सभी गाँववासियों को बड़ा कौतूहल था कि पूज्य बापू कैसे हैं ? बापूजी की लीलाओं के बारे में सुनकर गाँव के अन्य लोगों में भी पूज्य बापू के प्रति श्रद्धा जगी ।

उन दीक्षित साधकों ने सभी गाँववालों को सुविधानुसार पूज्य बापूजी के अलग-अलग आश्रमों में भेजकर दीक्षा दिलवा दी । गाँव के सभी व्यक्ति अपने पूरे परिवार के सहित दीक्षित हो चुके हैं ।

प्रत्येक गुरुवार को पूरे गाँव में एक समय भोजन बनता है । सभी लोग गुरुवार का व्रत रखते हैं । कौशलपुर गाँव के प्रभाव से आस-पास के गाँववाले एवं उनके रिश्तेदारों सहित १००० व्यक्तियों ने शराब छोड़कर दीक्षा ले ली है ।

गाँव के इतिहास में तीन-तीन पीढ़ी से कोई मंदिर नहीं था। गाँववालों ने ५ लाख रुपये लगाकर दो मंदिर बनवाये हैं। उनकी प्राण-प्रतिष्ठा शेष है। सभी साधकों की हार्दिक इच्छा है कि उनकी प्राण-प्रतिष्ठा पूज्य बापू के करकमलों द्वारा हो ।

पूरा गाँव व्यसनमुक्त एवं भगवद्भक्त हो गया, यह पूज्य बापू की अहैतुकी कृपा नहीं तो और क्या है ?

सबके तारणहार पूज्य बापू के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम... *- श्याम प्रजापति*

ताजपुर, उज्जैन (म.प्र.)

*

पूज्य बापूजी की असीम अनुकम्पा

दिनांक : १७ जनवरी २००० को अमदावाद शिविर में मैंने दीक्षा ली और विधि-विधान से नियम करने लगा। दिनांक : १ मार्च २००० की घटना है :

इससे पूर्व मेरी छोटी पुत्रवधू ने दो कन्याओं को आपरेशन द्वारा जन्म दिया था। इस बार तीसरी प्रसूति होनेवाली थी । मैंने अस्पताल जाकर बहू की जाँच करवायी तो डॉक्टरों ने साफ कह दिया : ''जब दो प्रसूति आपरेशन से हुई हैं तो तीसरी बार गर्भधारण होना ही नहीं चाहिए था और अगर हो भी गया है तो प्रसूति बिना आपरेशन के हो ही नहीं सकती। आपकी बहू तो बहुत कमजोर है, इसमें खून की कमी है । ज़रूरत पड़ी तो इसे खून भी देना पड़ेगा। ऐसी हालत में हम भी आपरेशन करने में असमर्थ हैं। आपको तो इसे भोपाल के अस्पताल में भर्ती करवाना पड़ेगा, वहीं कुछ हो सकता है ।''

मुझे गुरुदेव पर पूरा विश्वास था। मैंने गुरुदेव से मन-ही-मन प्रार्थना की। मेरे घरवाले सभी चिंतित थे। एक सप्ताह भी पूरा नहीं हुआ था कि सामान्य स्थिति में घर पर ही एक स्वस्थ बच्चे का जन्म हो गया !

यह केवल गुरुकृपा से ही संभव हुआ है ।

श्री सद्गुरु के श्रीचरणों में शत-शत प्रणाम !

- लक्ष्मण प्रसाद कुशवाह (पटेल)

ग्राम व पोस्ट : कुल्हार, जि. विदिशा (म.प्र.).

फरीदाबाद : द्वापरयुग के 'खांडवप्रस्थ', पराशर ऋषि की तपोभूमि एवं बाबा फरीद के फरीदाबाद में चार दिवसीय सत्संग-महोत्सव एवं पूर्णिमा दर्शन महोत्सव विशाल जनमेदनी की उपस्थिति में ऐतिहासिक रूप से संपन्न हुआ। यहाँ के दशहरा मैदान में आयोजित इस सत्संग कार्यक्रम में लोकसंत पूज्य बापूजी ने विश्वभर में फैल रहे आतंकवाद को समग्र मानवता, समग्र राष्ट्र एवं संस्कृति का शत्रु बताकर राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं सुरक्षा को संप्रदायवाद से महत्त्वपूर्ण बताया। पूज्य बापू ने जीव को ईश्वर का सनातन अंश बताकर जीव-ईश्वर की एकता अर्थात् परम विश्रांति में स्थिति पाने की आवश्यकता बतायी ।

दिनांक : १ अक्टूबर के दिन देशभर से आये हुए हजारों पूर्णिमा दर्शन व्रतधारी साधक भाई-बहनों ने पूज्य बापू के दर्शन और सत्संगरूपी प्रसाद को पाकर अपने जीवन को धन्य माना । (विशेष रूप से जानने योग्य है कि देशभर में पूज्य बापू के ऐसे हजारों भक्त हैं, जो हर महीने की पूनम के दिन पूज्य बापू के दर्शन करने के बाद ही अन्न-जल ग्रहण करते हैं ।)

इसके पहले सत्संग-कार्यक्रम के प्रथम दिन विद्यार्थियों के लिये विशेष सत्र का आयोजन किया गया । जिसमें भारत के भावी कर्णधाररूपी इन नौनिहालों को पूज्य बापू ने अपनी अलौकिक और आध्यात्मिक मस्ती का प्रसाद लुटाकर निहालकर दिया । पूज्य बापू ने पाठशालाओं में पढ़ाये जानेवाली लौकिक शिक्षा के साथ-साथ योग एवं आत्मविद्या के ज्ञान की भी आवश्यकता बतायी ।

सत्संग के अंतिम दिन दिनांक : २ अक्टूबर को भक्तों से खचाखच भरे विशाल सत्संग-मंडप में भक्तों ने दर्शन-सत्संग का अमृतपान करके सजल नेत्रों एवं भावपूर्ण हृदय से लोकसंत पूज्य बापू को भावभीनी विदाई दी ।

छोड़ के सुख-सुविधा की लालच, सहें तितिक्षा भूख और प्यास। फिर भी भक्त दूर से आते, कुछ तो है बापू आपके पास ॥
पूर्णिमा के सुअवसर पर फरीदाबाद (हरियाणा) में पूज्य बापू का सान्निध्य लाभ पाते हुए पूर्णिमा व्रतधारी साधक-साधिकायें।

आओ मिल मंगलगान करें, गुरुचरणों का ध्यान धरें। गुरु ज्ञान के पथ पर चलकर, आत्मसुधा का पान करें ॥
पूज्यश्री के आत्म-साक्षात्कार दिवस पर बरेली (उ. प्र.) के साधकों द्वारा निकाली गयी मंगल कलश यात्रा।
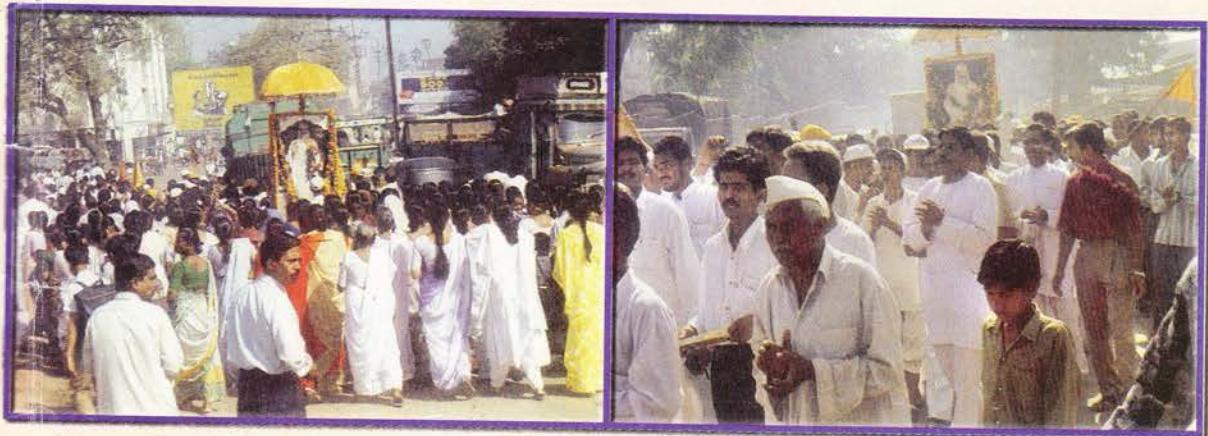
औरंगाबाद (महा.) के साधकों ने भव्य संकीर्तन यात्रा का आयोजन करके मनाया पूज्यश्री का आत्म-साक्षात्कार दिवस।
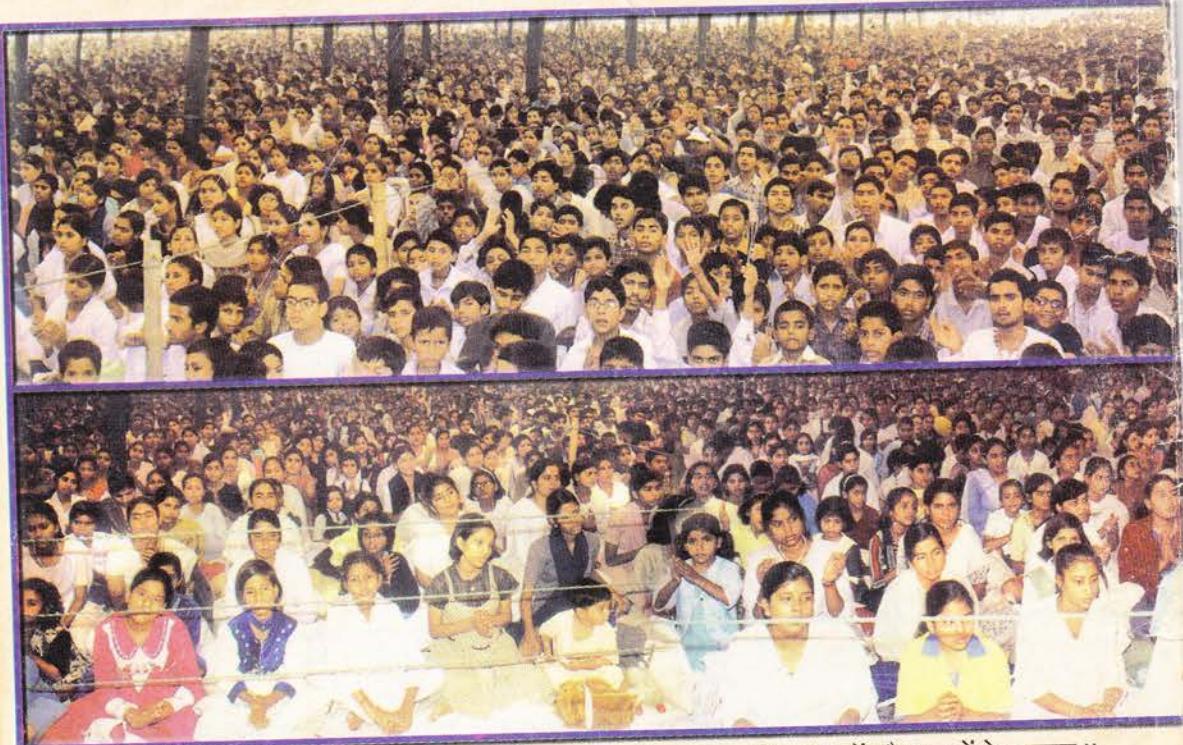
बापू ! हम बालक नादान, हमको दे दो ऐसा ज्ञान । जीवन अपना दिव्य बनायें और बनायें देश महान ॥
पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में महान बनने की शिक्षा पा रहे हैं आगरा (उ. प्र.) के नौनिहाल ।
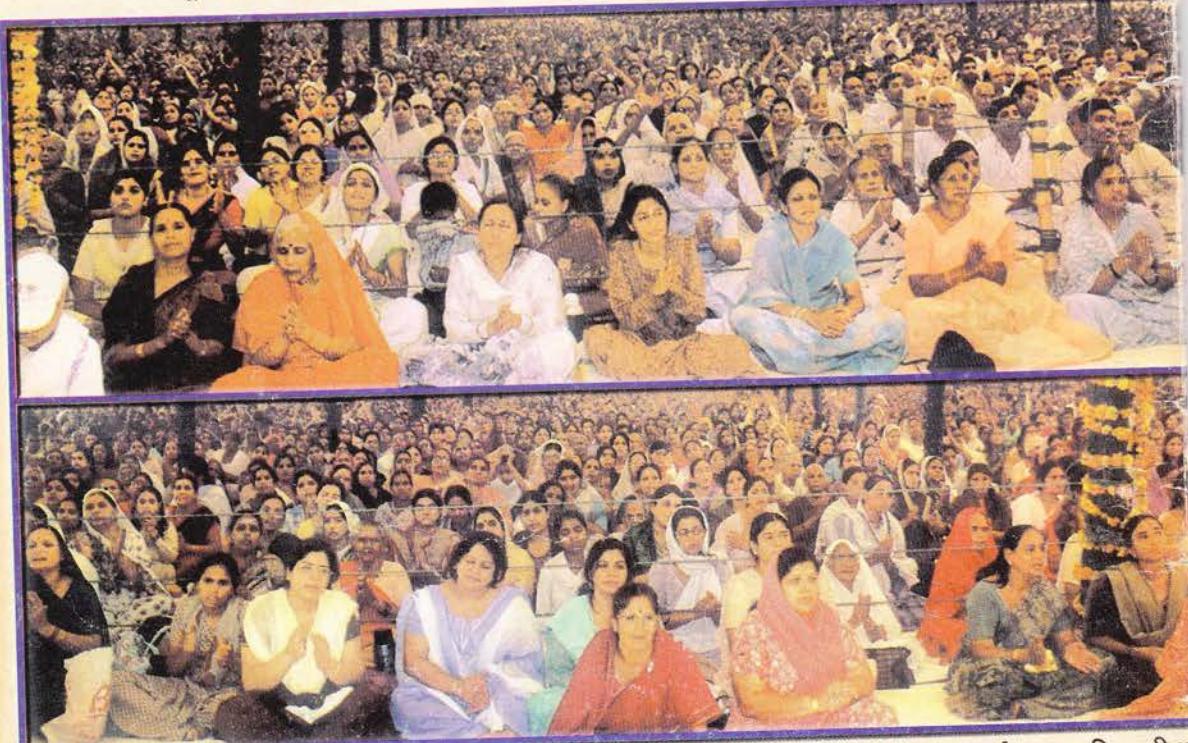
कुछ आनंदित, कुछ आह्लादित, सब पर छायी ईश्वरीय मस्ती । बापू ! आपके आगमन से, पावन हुई आगरा की धरती ॥
ईश्वरीय शांति की झलकें पाकर गद्गद हो रहे आगरा के पुण्यशाली श्रद्धालु भक्त ।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2001. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MO
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2001 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2001 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.